'MUKTIBODH KE PATRON MEIN MANVIYA SAMBANDH'

('MERE YUVJAN MERE PARIJAN' KE VISHESH SANDARBH MEIN)

A dissertation submitted during (Year) 2021 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of M.Phil. degree in Hindi School of Humanities.

By

ASHISH KUMAR VERMA

Department of Hindi

School of Humanities

University of Hyderabad, Gachibowli

Hyderabad- 500046

Telangana

India

मुक्तिबोध के पत्रों में मानवीय संबंध

(‘मेरे युवजन मेरे परिजन’ के विशेष संदर्भ में)

हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम.फिल. (हिन्दी)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु शोध प्रबंध

2021

शोधार्थी

आशीष कुमार वर्मा

पंजीयन संख्या – 19HHHL03

शोध निर्देशक — **विभागाध्यक्ष**

डॉ. एम. श्याम राव — **प्रो. गजेन्द्र पाठक**

हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद – 500046

पूजनीय ...

स्वर्गीय माँ को समर्पित

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled **‘‘MUKTIBODH KE PATRON MEIN MANVIYA SAMBANDH” (‘MERE YUVJAN MERE PARIJAN’ KE VISHESH SANDARBH MEIN) मुक्तिबोध के पत्रों में मानवीय संबंध (‘मेरे युवजन मेरे परिजन’ के विशेष संदर्भ में)** Submitted by **ASHISH KUMAR VERMA** bearing Regd.No 19HHHL03 in partial fulfillment of requirements for the award of Master of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free dissertation.

the dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other university or institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the supervisor

Signature

Head of Department

Signature

Dean of the School

DECLARATION

I **ASHISH KUMAR VERMA** hereby declare that this dissertation entitled **"MUKTIBODH KE PATRON MEIN MANVIYA SAMBANDH" ('MERE YUVJAN MERE PARIJAN' KE VISHESH SANDARBH MEIN) मुक्तिबोध के पत्रों में मानवीय संबंध ('मेरे युवजन मेरे परिजन' के विशेष संदर्भ में)** submitted by me under the guidance and supervisor of **Dr. M. SHYAM RAO** is a bonafide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other university or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in shodhganga /INFLIBNET.

NAME - ASHISH KUMAR VERMA

ENROLLMENT NUMBER – 19HHHL03

DATE -

भूमिका

साहित्यकारों के द्वारा लिखे गए पत्रों को साहित्यिक भाषा के प्रयोग तथा उनकी विशिष्ट वैचारिक अभिव्यक्ति के कारण साहित्य में इसे एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकार किया गया है। यह हिन्दी गद्य साहित्य की नवीनतम गद्य विधाओं में से एक है, किन्तु कम समृद्ध है। यूं तो कहा जाता है, कि पत्र लेखन लिखने की कला के साथ ही आरंभ हुआ होगा। किन्तु साहित्य की एक मूल्यवान विधा मानकर प्रकाशित करने और उसके कला रूप का विश्लेषण करने की प्रवृत्ति आधुनिक काल की देन है। पत्र-साहित्य का महत्व इसलिए है, कि उसमें पत्र लेखक अपेक्षाकृत अधिक मुक्त होकर अपने को व्यक्त करता है। इस आधार पर अगर उसे आत्मकथा की कोटि में रखा जाए तो कोई हानि न होगी, बल्कि इसके विपरीत पत्र साहित्य के बहाने आत्मकथा के तत्त्व पुष्ट ही होंगे। यह बिला वजह नहीं है, कि महापुरूषों, विशिष्ट जनों और साहित्य साधकों की जीवनियों और आत्मकथाओं में इन पत्रों की भरपूर सहायता ली जाती है। इस तरह हम उस व्यक्ति विशेष की अंतरंगता में तो प्रवेश कर ही पाते हैं, साथ ही उनके मनोभावों, विचारों से साक्षात्कार कर उनके व्यक्तित्व को भी ज्यादा वास्तविक रूप में जान पाते हैं। इतना ही नहीं किन्हीं पत्रों से तो युग विशेष की ध्वनि, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक पहलुओं से भी साक्षात्कार किया जा सकता है इसलिए इन पत्रों का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

इस महत्त्व को ध्यान में रखते हुए आधुनिक हिन्दी साहित्य के विशिष्ट कवि और विशिष्ट आलोचक गजानन माधव मुक्तिबोध को जानने-बूझने के लिए उनसे साक्षात्कार के लिए हमने उनके पत्रों को ही आधार बनाया; जहां वह पूरी अनौपचारिकता के साथ प्रकट होते हैं। और इसके अतिरिक्त हमने मुक्तिबोध को लिखे गए पत्रों को भी शामिल किया है, ताकि मुक्तिबोध के आचार व्यवहार के प्रति उनकी मैत्रीपूर्ण सामाजिकता

से भी हमारा साक्षात्कार हो सके। इस तरह इस शोध प्रबंध को तीन चरणों या तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक अध्याय मुक्तिबोध के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है।

प्रथम अध्याय उनके जीवन और व्यक्तित्व पर विहंगम दृष्टिपात करता है। द्वितीय अध्याय जिसमें उनके पत्रों के हवाले से उनकी निजता और साहित्यिक वैचारिकी को अलग-अलग समय में, अलग-अलग प्रसंगों के जरिए देखने की कोशिश की गई है। तृतीय और अंतिम अध्याय में उन पत्रों को रेखांकित किया गया है, जो मुक्तिबोध को लिखे गए हैं। इस तरह उस पूरी परिधि को समेटने की कोशिश की गई है, जिसमें मुक्तिबोध जी रहे थें।

कहते हैं कि हर उस दृष्टि, विचार, आचार-व्यवहार के लिए शुक्रगुज़ार होना चाहिए; जो हमारे जीवन को और बेहतर बनाता हो। जो हमारे विचारों में पारदर्शिता लाता हो, उसे अधिक तीक्ष्ण बनाता हो, हमें खरे सान पर घिसकर एक मुकम्मल रूप देता हो – तो सबसे पहले हैदराबाद विश्वविद्यालय के प्रति मेरा औपचारिक आभार जहां मास्टर ऑफ फिलॉसफी डिग्री हेतु मुझे प्रवेश मिला। इस प्रवेश की आधारभूमि ही मुझे हैदराबाद विश्वविद्यालय ले आई; जिसके बाद ही मुझे अन्य संरक्षण मिला।

मेरे आदरणीय शोध निर्देशक डॉ. *एम. श्याम राव* इनके प्रति आभार या शुक्रिया या शुक्रगुज़ार जैसे शब्द बिल्कुल नाकाफ़ी लगते हैं; क्योंकि इन्होंने कार्य करने की जितनी भी स्वतंत्रता की संभावना हो सकती है, वह सब मुझे अनायास ही उपलब्ध कराया। बिल्कुल अभिभावक की तरह अपना संरक्षण दिया। उनका स्नेह जल पाकर मैं अभिभूत हूँ। इनके अतिरिक्त मुझे हिन्दी विभाग के लगभग सभी गुरुजनों का भी स्नेह मिला। उनके ज्ञान के जल को छटांक भर ही सही मैं पी सका, उनसे मन और मस्तिष्क को भीगा सका, उनसे अभिसिंचित हो सका। उसके लिए भी मैं मस्तिष्क और आत्मा भर उन सभी का शुक्रगुज़ार हूँ।

शुक्रगुज़ार ही नहीं बल्कि ऋणी हूँ। इस कर्ज की भरपाई शायद मैं अगली पीढ़ी के जरिए कर सकूँ; लेकिन यह संभव नहीं लगता। बहरहाल अब मुझे यहाँ के वातावरण का बरबस ख्याल आ रहा है, जिसकी प्रकृति ने मुझे एक अद्भुत सुकून दिया। मस्तिष्क की शांति दी। कभी थका तो इसकी ठंडी हवाओं ने मेरे जिस्म और जेहन को तरोताजा किया। उसे ताजगी और स्फूर्ति से भर दिया। मैं आभार प्रकट करता हूँ – हैदराबाद विश्वविद्यालय की इस प्राकृतिक सौन्दर्य और उसके प्रांगण के प्रति जिसने मुझे प्रकृति की हरियाली से जोड़ कर रखा।

आभार विश्वविद्यालय की समृद्ध लाइब्रेरी के प्रति भी जिसका सहयोग मिलता रहा। कोटि-कोटि आभार उन तमाम लेखकों और विद्वानों के प्रति भी, कि जिनकी पुस्तकें पढ़कर, जिनके व्याख्यानों को सुनकर हम वैचारिक रूप से विकसित होते रहें और इस विचार यात्रा के हम भी यात्री बन सकें। उसके लिए भी मैं शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ।

इस शोध प्रबंध को पूरा करने में मेरे खास सहयोगी रहे हैं। उनमें पहला नाम मैं अभिषेक नंदन भईया का लेना चाहूँगा; जिन्होंने मेरी बहुत मदद की। पुष्कर भाई जिन्होंने संग साथ दिया, कुछ किया नहीं और न कुछ करते हुए भी बहुत कुछ किया। संग साथ भी बहुत कुछ करने से कम थोड़ी है और अंत में मित्र विकास शुक्ला जिसने कई सुझाव दिए। आप तीनों के प्रति भी मैं हृदय भर आभार प्रकट करता हूँ।

इस शोध कार्य को पूरा करने में जिन्होंने भी मेरी परोक्ष रूप से मदद की है, उन सभी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

प्रथम अध्याय : – मुक्तिबोध का जीवन और व्यक्तित्व **1 - 24**

1.1 – मुक्तिबोध का जीवन

1.2 – मुक्तिबोध का व्यक्तित्व

द्वितीय अध्याय : – मुक्तिबोध के पत्रों में निजता और साहित्यिक वैचारिकी **25 - 50**

2.1 – मुक्तिबोध के पत्रों में निजता

2.2 – मुक्तिबोध के पत्रों में साहित्यिक वैचारिकी

तृतीय अध्याय : - मुक्तिबोध के नाम पत्रों में मानवीय संबंध **51 – 109**

3.1 – मित्रता का अंतरंग भूगोल

3.2 – जीवन संघर्षों की अभिव्यक्तियाँ

3.3 – साहित्यिक गतिविधियां

3.4 – साहित्यिक वैचारिक संवाद

उपसंहार – **110 – 115**

आधार ग्रंथ - **116**

संदर्भ ग्रंथ - **116 – 117**

पत्र पत्रिकाएँ - **117**

प्रकाशित शोध आलेख - **118 - 123**

प्रथम अध्याय :

1 – मुक्तिबोध का जीवन और उनका व्यक्तित्व

1.1 - मुक्तिबोध का जीवन

1.1.1 - मुक्तिबोध का जन्म और उनके पुरखे

1.1.2 - मुक्तिबोध का बचपन

1.1.3 - मुक्तिबोध की शिक्षा

1.1.4 - मुक्तिबोध का विवाह

1.1.5 - मुक्तिबोध का आजीविका संघर्ष

1.1.6 - मुक्तिबोध की मृत्यु

1.2 – मुक्तिबोध का व्यक्तित्व

1.1-मुक्तिबोध का जीवन

जमाने भर का कोई इस कदर अपना न हो जाये

कि अपनी जिंदगी खुद आपको बेगाना हो जाए।[1]

शमशेर बहादुर सिंह की मात्र यह दो पंक्तियां बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में जन्में हिंदी के दुर्धर्ष कवि, चिंतक मुक्तिबोध के जीवन दर्शन, जीवन परिस्थितियों, एवं उनका आत्मसंघर्ष व्यक्त करने के लिए काफी है। बहरहाल उनका जन्म जिस दौर में हुआ, वह दौर रूसी क्रांति का दौर रहा। विश्व प्रथम विश्वयुद्ध के आग में जल रहा था। भारत सहित अनेक देशों में साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ आवाज बुलंद की जा चुकी थी। भारतीय राजनीतिक धरातल पर महात्मा गांधी का आगमन हो चुका था। *"साहित्य ने भी भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और प्रेमचंद जैसे समर्थ रचनाकारों की तरह फिर एक नायक को जन्म दिया। नाम था- गजानन माधव मुक्तिबोध।"*[2]

1.1.1-मुक्तिबोध का जन्म और उनके पुरखे

मुक्तिबोध का जन्म 13 नवंबर 1917 में मध्य प्रदेश (ग्वालियर) राज्य के मुरैना जिले के श्योपुर नामक गांव में एक मराठी परिवार में हुआ। मुक्तिबोध के पुरखा मूलरूप से जलगांव (खानदेश, महाराष्ट्र)

---

[1] सिंह, शमशेर बहादुर, प्रतिनिधि कविताएं, संपादक- डॉ नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, नौवां संस्करण:2018, पृष्ठ-संख्या-141

[2] ठाकुर,रमेश, अलक्षित मुक्तिबोध, प्रभाकर प्रकाशन, ईस्ट-दिल्ली, संस्करण-2021, पृष्ठ-संख्या-11

के रहने वाले थे। 19वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में अंग्रेजों का राज आ जाने पर मुक्तिबोध के परदादा **'वासुदेवजी'** जलगांव छोड़कर ग्वालियर आ बसे थे। जीविका की तलाश में उन्हें यहाँ आना पड़ा। उन दिनों ग्वालियर मध्य भारत का एक देशी राज्य था। *''मुक्तिबोध के दादा गोपालराव वासुदेव ग्वालियर राज्य के टोंक नामक स्थान में, जोकि फिलहाल राजस्थान में है और जिला है, दफ्तरदार यानी ऑफिस सुपरिंटेंडेंट थे। उन्हें फारसी की अच्छी जानकारी थी, इस कारण वे 'मुंशी' कहकर पुकारे जाते थे। उनके और भी भाई थे, जो संभवत: विरक्त थे। उनके संबंध में इससे अधिक कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। मुक्तिबोध के पिता माधवराव मुक्तिबोध; जो गोपालराव जी के एकमात्र पुत्र थे, रियासत में सब इंस्पेक्टर थे, जिसे प्राय कोतवाल कहा जाता था।''*[3] बहुत ही ईमानदार और दबंग किस्म के व्यक्ति रहें। मुक्तिबोध के अनुज भाई शरतचंद्र माधव मुक्तिबोध अपने पिता के बारे में बताते हैं कि *''पिताजी जीवन पर्यंत हुकूमत के कानून के पक्षधर रहे। रियासत की नौकरी में भी वह राजभक्त नहीं थे, आजादी के बाद भी वह कानून की पाबंदी को महत्वपूर्ण मानते रहे। वह इस सिद्धांत के कायल थे, कि व्यक्ति को राज्य के कानून का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। यूं अंग्रेजी जमाने में भी वह गांधी जी का दिल से आदर करते थे, और अपनी नौकरी के आरंभ में तिलक का 'केसरी' मंगाया करते थे।''*[4]

मुक्तिबोध की वंशोपाधि के संदर्भ में शमशेर **'चांद का मुंह टेढ़ा है'** की भूमिका में लिखते हैं, कि *''ऋग्वेद कुलकर्णी ब्राह्मणों में किसी पूर्वज ने 'मुग्ध-बोध' या मुक्त-बोध नाम का (दास-बोध की तरह या जवाब में?) कोई आध्यात्मिक ग्रंथ संभवत: खिलजी काल में लिखा था। कालांतर में उसी पर वंश का नाम चल पड़ा।''*[5] लेकिन शरतचंद्र का इस संदर्भ में कुछ भिन्न मत भी प्रकट होता है। वह कहते हैं, कि *'' 'मुग्ध-बोध' शायद दक्षिण में व्याकरण संप्रदाय था, यह मैं अपनी सोच से कह रहा हूँ, आप इसे प्रामाणिक मत*

---

[3] नवल,नंदकिशोर, मुक्तिबोध, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई-दिल्ली, प्रथम संस्करण-1996, पृष्ठ-संख्या-9-10

[4] वर्मा,मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-81

[5] मुक्तिबोध,गजानन माधव, चाँद का मुँह है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई-दिल्ली, बीसवाँ संस्करण : 2010, पृष्ठ-संख्या-13

मानिए। इस पर मैंने कभी विशेष तवज्जो नहीं दी। 'मुक्ति-बोध', मैं समझता हूँ, महाराष्ट्र में हमारे ही परिवार का सरनेम है। 'मुक्त-बोध' ग्रंथ के बारे में मेरी कुछ जानकारी नहीं है। 'मुक्त-बोध' के आधार पर 'मुक्तिबोध' मुझे बैठाया हुआ जोड़-तोड़ प्रतीत होता है। हाँ, वैसे हम लोग कुलकर्णी हैं।"[6]

मुक्तिबोध की माता पार्वतीबाई हिंदी क्षेत्र ईसागढ़ (बुंदेलखंड, शिवपुरी) के एक समृद्ध किसान परिवार की कन्या थीं। हिंदी वातावरण में पली हुई और उस जमाने में छठी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की हुई। विद्यार्थी जीवन में अपनी शैक्षणिक योग्यता के बल पर उन्हें ₹100 का इनाम भी प्राप्त हुआ था। उनका परिवार समृद्ध था। दूध दही की नदी बहा करती थी। वे बहुत ही भावुक और स्वाभिमानी महिला थीं। उनके प्रिय लेखक हिन्दी के प्रेमचंद और मराठी के हरिनारायण आप्टे थे। मुक्तिबोध ने अपने एक लेख **'मेरी माँ ने मुझे प्रेमचंद का भक्त बनाया'** में उनके व्यक्तित्व को इन शब्दों में पिरोया है, वह कहते हैं, कि *"मैं अपनी भावना में प्रेमचंद को माँ से अलग नहीं कर सकता। मेरी माँ सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध क्षोभ और विद्रोह से भरी हुई थी। यद्यपि वह आचरण में परंपरावादी थी, किंतु धन और वैभवजन्य संस्कृति के आधार पर ऊँच-नीच के भेद का तिरस्कार करती थी।"*[7] मुक्तिबोध के पिता मराठी भाषी और माता हिंदी इस तरह उनका द्विभाषीय संस्कृतियों की छांव में पालन-पोषण हो सका।

1.1.2-मुक्तिबोध का बचपन

मुक्तिबोध कुल चार भाई थे, जिनमें शरतचंद्र माधव मुक्तिबोध, बसंत माधव मुक्तिबोध, चंद्रकांत माधव मुक्तिबोध क्रमश: छोटे भाई रहे हैं। *"शरतचंद माधव मुक्तिबोध मराठी के जाने-माने कवि और साहित्यकार हैं। घर में बड़ा होने के कारण माता-पिता के अतिरिक्त दादा का स्नेह मुक्तिबोध को सभी भाइयों*

---

[6] वर्मा,मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-80

[7] संपादक- जैन,नेमिचन्द्र, मुक्तिबोध समग्र (खंड–6), राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण-2019, पृष्ठ-संख्या-510

से अधिक मिला जब से इनके पहले दो भाइयों की मौत हो गई, तब से वह अधिक दुलारे हो गए थे। उनकी प्रत्येक इच्छा पूरी की जाती थी। बचपन बड़े लाड़-प्यार में गुजरा।"[8] आत्मकथा के शिल्प में लिखी गई जीवनी के हवाले से इस बात की पुष्टि होती है। वह कहते हैं, कि *"माँ बताया करती- मैं चार-पांच साल का था, पहले दो लड़के गुजर जाने से मेरा बड़ा लाड़-प्यार होता, कभी आंखों से ओझल नहीं होने दिया। पिताजी सब- इंस्पेक्टर पुलिस थे। मुझे तब थाने के बरांडे में बिठा दिया जाता, एक सिपाही दूसरे सिपाही को पीटने का बहाना करता, दूसरा सिपाही मानो डरा हुआ मेरी शरण में आता और कहता 'देखो रज्जन भैया, हमें मारा' और झूठ-मूठ रोने लगता, मैं फौरन कुर्सी से नीचे कूद पड़ता और पिताजी की छड़ी उठाकर मारने वाले सिपाही के पीछे- पीछे दौड़ पड़ता, वह सिपाही छिपता, फिर पकड़ में आ जाता, मेरी मार खाता । वर्दी में लैस पिताजी यह सब देख अपनी घनी घनी मूछों में से हंसते रहते।"*[9] बचपन में ही इस तरह के प्रतिकार के भाव से उनका संस्कार बड़ी मजबूती से होता रहा। वह अपनी बात मनवाने के लिए रोया करते। अतिरिक्त लाड़-प्यार ने उन्हें जिद्दी बना दिया था। शाम को अर्दली बाबागाड़ी में बैठाकर उन्हें हवाखोरी के लिए ले जाता। सातवें–आठवें साल तक उन्हें अर्दली ही कपड़ा पहनाया करता था। उन्हें लगता अर्दली कोई कपड़े पहनाने वाला जादूगर है। उनके *" पिताजी रियासती पुलिस सब-इंस्पेक्टर थे, यानी गाँव के राजा थे।"*[10] इसलिए मुक्तिबोध की सब जगह खुशामद होती थी, जब वह कुछ बड़े हुए तो अर्दली ही नहीं घर के लोग भी उनकी मां की आज्ञा से उन्हें बाबू साहब कहकर पुकारने लगे थे। परिवार में केवल नानी ही उन्हें रज्जन पुकारा करती थीं।

---

[8]ठाकुर,रमेश, अलक्षित मुक्तिबोध, प्रभाकर प्रकाशन, ईस्ट-दिल्ली, संस्करण-2021, पृष्ठ-संख्या-14

[9] शर्मा,विष्णुचंद्र, मुक्तिबोध की आत्मकथा, संवाद प्रकाशन, मेरठ, संस्करण तीसरा-2018, पृष्ठ-संख्या-48

[10] वही, पृष्ठ-संख्या-48

1.1.3-मुक्तिबोध की शिक्षा

मुक्तिबोध की आरंभिक शिक्षा उज्जैन, विदिशा, अमझरा और सरदारपुर आदि स्थानों पर हुई। *"पिता के पुलिस सब-इंस्पेक्टर होने के कारण और बार-बार बदली होने के कारण मुक्तिबोध की पढ़ाई का सिलसिला टूटता-जुड़ता रहा; फलतः 1930 में उज्जैन में मिडिल परीक्षा में असफलता मिली, जिसे कवि अपने जीवन की 'पहली महत्वपूर्ण घटना' मानता है।"*[11] सफलता उन्हें अगले साल 1931 में प्राप्त हुई, इस सफलता से वे पारिवारिक सदस्यों तथा बाहर के लोगों के लिए प्रशंसा के प्रमुख पात्र बन गए थे। उन्होंने सन् 1935 में माधव इंटर कॉलेज से ही इंटरमीडिएट की परीक्षा पास की। इन संदर्भों के बारे में अपने साक्षात्कार में शरतचंद्र माधव मुक्तिबोध बताते हैं, कि *"माधव इंटर कॉलेज, उज्जैन से भाई साहब ने इंटर किया। हां, मिडिल में वह एक बार फेल हुए थे। घर में वह विशिष्ट समझे जाते थे। उनके परीक्षा में सफलता प्राप्त करने पर घर में उत्सव मनाया जाता था, तब उन्हें बड़ा मान मिलता।"*[12] वह इंटरमीडिएट के दौरान ही नियमित रूप से काव्य-रचना प्रारंभ कर चुके थे, उनकी प्रतिभा का अंकुर यहीं फूटा। बीड़ी का चस्का भी यहीं से लगा। शमशेर जी ने लिखा है, कि *"इनका एक सहपाठी था शांताराम, जो गश्त की ड्यूटी पर तैनात हो गया था। गजानन उसी के साथ रात को शहर की गुमक्कड़ी को निकल जाते। बीड़ी का चस्का शायद तभी से लगा।"*[13] शमशेर की इस टिप्पणी से शांताराम क्षीरसागर बेहद नाराज हुए और उन्होंने इसकी शिकायत शरतचंद्र से की। जिसको उन्होंने अपने साक्षात्कार में साझा किया, वो कहते हैं, कि *" वे बहुत*

---

[11] संपादक - अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई-दिल्ली, संस्करण-बारहवां : 2019, पृष्ठ-संख्या-19

[12] वर्मा,मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-84

[13] मुक्तिबोध,गजानन माधव, चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई-दिल्ली, बीसवाँ संस्करण : 2010, पृष्ठ-संख्या-14

नाराज हैं, कि ***'चांद का मुंह टेढ़ा है'*** *की भूमिका में बीड़ी पीने की लत का उन्हें जिम्मेदार ठहराया गया है। मैंने उन्हें कह दिया, दिल्ली जाकर शमशेर जी से लड़ो। दरअसल उन्होंने भाई साहब को बीड़ी पीना नहीं सिखाया, वे तो बीड़ी सिगरेट छूटे भी नहीं।''*[14] आगे की पढ़ाई के लिए मुक्तिबोध अपनी बुआ आत्ताबाई (भागोबाई देवासकर) के पास इंदौर चले गए। उनकी बुआ महाराजा तुकोजीराव हॉस्पिटल में रॉयल नर्स के तौर पर कार्यरत रहीं। मुक्तिबोध ने इंदौर के होल्कर कॉलेज में प्रवेश ले लिया। यही उनकी मित्रता वीरेंद्र से प्रगाढ़ हुई, और वीरेन्द्र के माध्यम से ही वह प्रभाकर माचवे से मिलें। उस समय माचवे इंदौर के क्रिश्चियन कॉलेज में पढ़ते थे। सन् 1937 में एक बार फिर मुक्तिबोध बी.ए. की परीक्षा में असफल हुएं। सफल वह अगले वर्ष 1938 में हुएं । इस समय उनका मानसिक विस्तार होने लगा था। उनकी रचनाएं 'कर्मवीर', 'वीणा' जैसी पत्रिकाओं में छपने लगी थी। मुक्तिबोध की आरंभिक रचनाओं में छायावादी रूमानियत का प्रभाव देखा जा सकता है। वे महादेवी वर्मा और माखनलाल चतुर्वेदी की शैली में कविताएं लिखते थे। इंटरमीडिएट के दौरान मुक्तिबोध पर उनके प्राध्यापक **'रमाशंकर शुक्ल' 'हृदय**' का भी प्रभाव रहा है। इस संदर्भ में शरतचंद्र कहते हैं, कि *''प्रतिष्ठित कवि रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' माधव कॉलेज में प्राध्यापक थे। भाई साहब पर कभी उनका पूरा-पूरा प्रभाव रहा था। उन्होंने ही, मैं समझता हूं, भाई साहब की पहली रचना कॉलेज मैगजीन में छापी थी। बाद में तो वे रहे ही नहीं, भाई साहब का रुख भी तब बदल चुका था।''*[15] मुक्तिबोध ने B.A. पास करने के बाद M.A. भी द्वितीय श्रेणी में नागपुर विश्वविद्यालय से सन् 1953 में पास किया। इस लंबे अंतराल में उन्होंने कई बार एम.ए. कर लेने की अपनी इच्छा जाहिर कि लेकिन सफल न हो सकें।

[14] वर्मा,मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-83

[15] वही, पृष्ठ-संख्या-84

1.1.4 - मुक्तिबोध का विवाह

इंदौर में मुक्तिबोध का परिचय शांताबाई से हुआ। जिनकी मां मनुबाई मुक्तिबोध की बुआ भागोबाई देवासकर के यहाँ रसोई बनाती थी, और उन्हीं के साथ के क्वार्टर में रहती थीं। शांताबाई से मुक्तिबोध की निकटता उनकी बीमारी के दौरान ही हुई। मुक्तिबोध कहते हैं, कि *"शांताबाई की आंखों में सेवा का स्निग्ध भाव मेरी त्वचा को आवृत करता रहता, उसकी सेवा से उसका प्रेम पुष्ट होता गया।"*[16] वह आगे कहते हैं, कि *"इस बीमारी में शांताबाई जहां एक मूल्यवान अशर्फी की तरह मेरे जीवन में आई, वहीं बी. ए. में असफलता का राक्षसी दर्द मुझे भयंकर सियाह निराशा में थकाता रहा, मेरा एक हिस्सा शांताबाई के साथ हँसता था, दूसरा हिस्सा जड़ता में मुझे कसता गया, मेरे विभाजित व्यक्तित्व ने मुझे घर में एकांत प्रिय बनाया, कॉलेज के साथी मुझसे आगे की दिशा में सोच रहे थे, मैं दिशाव्यापी दौड़ में पीछे हट या छूट गया।"*[17] मुक्तिबोध शांताबाई से दूर रहने पर हमेशा उनसे मिलने की चाह रखते थे। इसी से जुड़ा एक किस्सा शांताराम क्षीरसागर अपने साक्षात्कार में साझा करते हैं, कि वह गर्मियों की छुट्टियों में आए हुए थे। अचानक ही उन्होंने मुझसे इंदौर चलने के लिए कहा। उनकी जेब खाली है, यह बात रात को स्टेशन पर पहुंचने के बाद हमें मालूम हुआ। उन्हें शायद इस बात का खयाल ही नहीं रहा, कि रेल में सफर करने के लिए टिकट खरीदना पड़ता है। पैसे मेरे पास भी नहीं थे। गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी थी, हम डब्ल्यू. टी. में सवार हो गएं। पालिया स्टेशन पर टी.टी. हमारे डिब्बे में आ गया। जिससे जैसे-तैसे बहाना बनाकर पीछा छुड़ाया गया। आगे शांताराम बताते हैं, कि *" अब मुक्तिबोध ने मुझे बताया कि हमें मनुबाई के यहां इस तरकीब से पहुंचना है, कि बुआ जी को पता न चले। मनुबाई उनकी बुआजी की रसोई बनाती थीं, और साथ के क्वार्टर में रहती थीं। हम चोरों की तरह छिपकर रात के 12:30 बजे मनुबाई के यहां पहुंचे। मुझे उनकी स्थिति कुछ अच्छी*

[16] शर्मा,विष्णुचंद्र, मुक्तिबोध की आत्मकथा, संवाद प्रकाशन, मेरठ, संस्करण तीसरा-2018, पृष्ठ-संख्या-55

[17] वही, पृष्ठ-संख्या-56

नहीं जान पड़ी। वहां उनकी लड़की के साथ मुक्तिबोध कुछ देर तक बातें करते रहें। मैं चुपचाप वह सब देखता रहा, मगर पूछा कुछ नहीं कि माजरा क्या है? मेरे प्रति आश्वस्त होकर मनुबाई बोलीं: 'देखो भाई यह, ये मानते नहीं हैं, ताई (मुक्तिबोध की माताजी) सुनेंगी तो क्या कहेंगी'। कुछ देर बाद मुक्तिबोध ने कहा कि हम घूमने चलते हैं। शांताराम, तुम भी साथ चलो। रास्ते में मुझे एक जगह बैठाकर वे बिस्को पार्क की ओर निकल गए और घंटे भर बाद वापस आए। सुबह 7:00 बजे मनुबाई से टिकट के पैसे लेकर हम उज्जैन के लिए रवाना हुए।"[18]

बी. ए. पास करने के बाद मुक्तिबोध के सामने दो समस्याएं पैदा हुई, पहली नौकरी की और दूसरी शांता से विवाह करने की। उनके प्रेम की भनक घरवालों के कानों में पड़ चुकी थी। उनके पिताजी चाहते थे, कि उनका बेटा किसी अच्छे सरकारी पद को प्राप्त करे। यह संभव भी था, क्योंकि महकमें में उनका अच्छा-खासा प्रभाव था। तहसीलदार की नौकरी तो उन्हें आसानी से मिल रही थी। उन्होंने उसे स्वीकार इसलिए नहीं किया क्योंकि सरकारी नौकर होना तो गुलामी को स्वीकार करने के बराबर मानते थे। इसीलिए इधर-उधर के स्कूलों में मास्टरी करना ही ज्यादा मुनासिब समझा। मुक्तिबोध ने जब अपने विवाह का प्रस्ताव घर वालों के सामने रखा तो उसका घोर विरोध हुआ। सबसे ज्यादा विरोध तो उनकी बुआ का रहा, क्योंकि शांताबाई उनकी बुआ की नौकरानी की लड़की थीं। इसके अतिरिक्त शांताबाई को अपनी मां की ही तरह अस्थमा की शिकायत थी। इसी बीच कुछ दिनों के लिए माधवराव जी का तबादला ग्वालियर हो गया। मुक्तिबोध भी उनके साथ ग्वालियर चले गए। शांताराम बताते हैं, कि *"अपने विवाह के प्रस्ताव के तीव्र विरोध से क्षुब्ध होकर वे घर पर बिना बताए, मेरे पास उज्जैन भाग आएं। मैं तब तक अविवाहित था। मेरी माता जी उन्हें पुत्र के समान मानती थी। अपनी जिद को उन्होंने दृढ़तापूर्वक मेरे सामने प्रस्तुत किया : 'मेरा विवाह शांता के साथ ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। यदि इसे स्वीकार नहीं किया गया तो मैं अपने पिताजी*

---

[18] वर्मा,मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-108

के पास कभी नहीं जाऊंगा, चाहे कहीं जाना पड़े।' उन्होंने चार-पांच पृष्ठों का एक आवेशपूर्ण पत्र पिता के नाम लिखा, चूंकि वैसी बातें उनके सामने कहने की उनमें हिम्मत नहीं थी। पिताजी भी अपना विरोध त्यागने को तैयार नहीं थे, उन्होंने भी स्पष्ट कह दिया : 'यह शादी नहीं होगी, चाहे वह जहां जी चाहे चला जाए।' मां के हृदय ने बेटे के दर्द का अंदाजा लगा लिया होगा, उन्होंने पक्ष लेना शुरू कर दिया, इस पर पिताजी भीतर ही भीतर रजामंद हो गए होंगे।"[19] अंततः बड़े ही सादे ढंग से सन् 1939 में मुक्तिबोध का शांताबाई से विवाह हो गया। विवाह में बुआ शामिल न हुई, उनका विरोध जीवन पर्यंत रहा।

1.1.5- मुक्तिबोध का आजीविका संघर्ष

मुक्तिबोध के पिता जब सेवानिवृत्त हुए तो मुक्तिबोध बी. ए. कर चुके थें। परिवार का बड़ा बेटा होने के नाते उनसे यह उम्मीद की जाती कि वह अपनी जिम्मेदारियों को समझेंगे, संभवत इसी कारण पिता के रिटायरमेंट से पूर्व ही उन्होंने यह कोशिश शुरू कर दी। उन्होंने पहली अस्थाई नौकरी बड़नगर के मिडिल स्कूल में बतौर अध्यापक के रूप में शुरू की। जहाँ वह जुलाई 1938 से लेकर अक्टूबर 1938 तक कुल चार माह के लिए ही सेवा दे सकें और किन्हीं कारणों से वहां से त्यागपत्र देकर सन् 1938 के नवंबर माह से वह शुजालपुर मंडी के **'शारदा शिक्षा सदन'** में अध्यापन हेतु चले गएं। सदन के प्रधानाध्यापक नारायण विष्णु जोशी से मुक्तिबोध का परिचय प्रभाकर माचवे के माध्यम से ही हो सका। यहाँ वह 1939 के जुलाई माह तक ही रहें। उसके बाद वह सदन को छोड़कर उज्जैन चले आयें। तत्पश्चात अगस्त 1939 से उज्जैन के दौलतगंज मिडिल स्कूल में बहाल हो गए। वह सितंबर 1941 तक वहीं अध्यापन करते रहें। साहित्यिक दृष्टि से उज्जैन में यह अवधि बहुत ही महत्वपूर्ण रही, क्योंकि माचवे अब उज्जैन के माधव कॉलेज में

---

[19] वही, पृष्ठ-संख्या-109-110

प्राध्यापक होकर आ गए थे। जिसमें माचवे छायावाद के प्रभाव से पूरा मुक्त न हुए थे, किंतु उनमें एक नवीनता थी। उनमें संशय और आस्था का स्वर था, बौद्धिक गंभीरता के साथ। मुक्तिबोध उनसे प्रभावित थे, और उनका मस्तिष्क कई सवालों को लेकर प्रश्नांकुल था। *" गांधी, मार्क्स, फ्रायड, युंग, एडलर, रूसी और फ्रांसीसी उपन्यासकार- माचवे के साथ उनकी चर्चा मुख्य रूप से इन्हीं पर केंद्रित होती और देर तक चलती। यह समय भी ऐसा था, जिसमें यूरोप में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ चुका था, भारत में स्वाधीनता- आंदोलन बहुत संकटपूर्ण दौर से गुजर रहा था और हिंदी साहित्य का परिदृश्य भी बदल रहा था।"*[20] 1941 का अक्टूबर का महीना जब मुक्तिबोध पुनः **'शारदा शिक्षा सदन'** लौट आएं। यहां अब नेमिचंद्र जैन भी आ चुके थे। जिनसे आगे चलकर मुक्तिबोध के अत्यंत घनिष्ठ संबंध हुए। मुक्तिबोध का मार्क्सवाद के प्रति रुझान इन्हीं के प्रभाव में आकर हुआ था। आगे चलकर इस संदर्भ में अपने 30/10/45 के पत्र में नेमिचन्द्र जैन को संबोधित करते हुए, उन्होंने लिखा भी है, कि *" आपने एक व्यक्ति के साथ नाज़ुक खेल खेला है। उसे कम्युनिस्ट बनाया, दुर्धर्ष घृणा के उत्ताप से पीड़ित।"*[21] सन् 1942 में सदन बिखर गया। जोशी जी त्यागपत्र देकर कानपुर और फिर वहां से मुंबई चले गए । आगे चलकर मुक्तिबोध उज्जैन लौट गए और नेमिचंद्र जैन कलकत्ता। सन् 1942 ईसवी में मुक्तिबोध ने उज्जैन में '**प्रगतिशील लेखक संघ**' की स्थापना की थी। 1943 की फरवरी में मुक्तिबोध ने उज्जैन में '**मध्य भारतीय लेखक संघ परिषद**' का आयोजन किया। जिसकी अध्यक्षता जैनेंद्र कुमार ने की। इसके साथ सन् 1943 में ही मुक्तिबोध ने इंदौर में फासिस्ट - विरोधी लेखक सम्मेलन का आयोजन किया। जिसमें राहुलजी ने अध्यक्षता की। सन् 1944 में मुक्तिबोध भारत-सोवियत मैत्री संघ के अधिवेशन में भाग लेने के लिए बंबई गए थे। यह सब चल रहा था, लेकिन मुक्तिबोध आर्थिक रूप से बेहद परेशान थे। यही कारण था, कि वे यहां-वहां भटकते रहें। सन् 1943 में ही मॉडेल

---

[20]नवल,नंदकिशोर, मुक्तिबोध, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई-दिल्ली, प्रथम संस्करण-1996, पृष्ठ-संख्या-19-20

[21] संपादक- जैन,नेमिचन्द्र, मुक्तिबोध समग्र (खंड–7), राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण-2019, पृष्ठ-संख्या-337

हाईस्कूल से छुट्टी लेकर वह उज्जैन से कलकत्ता नेमि और भारतभूषण अग्रवाल के पास चले गए थे। जिनके प्रयत्न से उन्हें सेठ मूलचंद अग्रवाल के दैनिक अखबार **'विश्व बंधु'** में काम मिल गया था। जहां वह मई-जून केवल दो माह ही कार्य कर सकें और वहां से लौट आएं। कभी वह जबलपुर के ऑर्डिनेंस फैक्टरी में काम करने की सोचते तो कभी इरादा बदल देते। 1945 के मध्य में वह वायु सेना में भर्ती होने के लिए बेंगलुरु चले गए। वहां भी उनका मन नहीं लगा और एक महीने में ही उज्जैन वापस आ गए। 1945 में ही उज्जैन से बनारस गए और वहां सितंबर माह से ही त्रिलोचन शास्त्री के साथ 'हंस' के संपादन कार्य में लग गए। मुक्तिबोध संपादन से लेकर डिस्पैच तक का काम करते थे। वेतन मिलता था, मात्र 60/ रुपये। इसलिए यहां भी उनका मन नहीं लगा। हकीकत यह थी कि उनके कष्टों का निर्वाण वहां भी न हो सका। अक्टूबर 1946 के अंतिम दिनों में वे जबलपुर आ गए और अगले ही महीने डी.एन.जैन हाईस्कूल में प्राध्यापक हो गए। *''मुक्तिबोध का जबलपुर आना शुरू से ही उनके लिए कष्टकर सिद्ध हुआ। बनारस से जबलपुर आते हुए रास्ते में शांता जी अस्वस्थ हो गई, साथ में नवजात बच्ची भी। शांताजी पंद्रह दिनों तक निमोनिया में पड़ी रहीं। बीच में प्रलापावस्था में भी पहुंची और मूर्च्छित भी रहीं।''*[22] मुक्तिबोध का कष्ट इससे और भी बढ़ गया था। डॉक्टर लगे हुए थे, लेकिन उनके पास अब पैसे नहीं बचे थे। वह सब तरह से हार कर ही माता-पिता से पैसों के लिए कह सकते थे। मुक्तिबोध ने सांप्रदायिक माहौल में भी कुछ दिन **'जय-हिंद'** में काम किया। प्रतिबंधित कम्युनिस्ट पार्टी के साप्ताहिक पत्र **'न्यू-एज'** के जबलपुर में सरकुलेशन को लेकर भी सहयोग दिया। साथ ही महाकौशल महाविद्यालय में हिंदी की कक्षाएं भी लीं। फिर भी उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ। अक्टूबर 1948 में जबलपुर छोड़कर वे नागपुर आ गए और सचिवालय के सूचना एवं प्रकाशन विभाग में नौकरी करने लगे। *''नागपुर उन दिनों मध्य-प्रदेश की राजधानी थी। वहाँ का वेतनमान स्कूल से बेहतर था, सेवा में अधिक निश्चितता थी, इसलिए उन्हें उम्मीद हुई, उनकी आर्थिक*

---

[22] नवल,नंदकिशोर, मुक्तिबोध, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई-दिल्ली, प्रथम संस्करण-1996, पृष्ठ-संख्या-28

स्थिति में सुधार होगा।"[23] लेकिन यहाँ भी वह संतुष्ट न हो सकें, *"सरकारी नौकरी में अभाव तो बना हुआ था ही, आजादी पर भी पाबंदी लग गई थी और जिस अनुपात में काम बढ़ गया था। पत्नी परिस्थिति से अत्यंत असन्तुष्ट थी, पिता के साथ उन्होंने पत्राचार बंद कर दिया था। यह बात उन्हें लगातार मथित और पीड़ित करती थी कि वे माता-पिता की पैसे भेजकर सहायता नहीं कर सकते थे।"*[24] अपने माता-पिता को रुपये भेजने के लिए बहुत कड़े सूद पर पठानों तक से कर्ज लिया। वेतन तारीख को ही बट जाता, घर के लिए कुछ न बचता। फिर परिवार चलाने के लिए सारा महीना छोटे-छोटे उधारों का सहारा लेना पड़ता था। एक समय के बाद सूचना तथा प्रकाशन विभाग में उनका रहना कठिन हो गया था। कम्युनिस्ट रहने के कारण खुफिया पुलिस बराबर उनके पीछे लगी रहती थी। जबलपुर के बाद वह पार्टी में सक्रिय न रह गए थे। शायद यही सोचकर उन्होंने अपनी सदस्यता का नवीनीकरण भी न कराया, कि सरकारी नौकरी में रहने पर उससे बाधा पड़ेगी। फिर भी वे सरकार की नजर में संदिग्ध थे। इसके अलावा उनके अधिकारी भी उनसे द्वेष भाव रखते थे। जिससे बात बिगड़ गई और मुक्तिबोध एक सीमा के बाद समझौता करते भी न थे। इसलिए अक्टूबर 1954 में आकाशवाणी, नागपुर के प्रादेशिक समाचार विभाग में वह चले गए। वहाँ रेडियो स्टेशन के समाचार विभाग में न्यूज रीडर के पद पर नियुक्त हुए। कुछ समय बाद माहवारी कॉन्ट्रैक्ट पर यहाँ से उनका स्थानांतरण भोपाल रेडियो स्टेशन पर कर दिया गया। लेकिन वहाँ जाना और माहवारी कॉन्ट्रैक्ट पर काम करना, जिसमें नौकरी का स्थायित्व नहीं था। उन्हें स्वीकार्य नहीं हुआ और वहाँ जाने से इनकार कर दिया। अक्टूबर 1956 में स्वामी कृष्णानन्द सोख्ता के आमंत्रण पर मुक्तिबोध सवा दो सौ की तनख्वाह पर 'नया खून' साप्ताहिक पत्र के संपादक बने। इस पत्र के उत्थान में मुक्तिबोध ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मुक्तिबोध की राजनीतिक विचारधारा को प्रखर करने में 'नया-खून' का बड़ा योगदान है। वे इस पत्र में विश्व राजनीति संबंधी लेख लिखते थे। यह एक क्रांतिकारी पत्र रहा है। नागपुर से श्रीकांत वर्मा को एक पत्र जो

---

[23] वही, पृष्ठ-संख्या-31

[24] वही, पृष्ठ-संख्या-32

01/02/58 का है, जिसमें मुक्तिबोध ने लिखा था कि *" नया खून की नौकरी रात को डेढ़-डेढ़, दो-दो बजाती है। शरीर में शक्ति का अभाव है। जब तक यह नौकरी छोड़ नहीं पाता, तब तक हालत ऐसी ही रहने वाली है। स्वास्थ्य एकदम चौपट है और बड़ी-बड़ी फिक्रें लग गई है।"*[25]

मुक्तिबोध एक लंबे समय से लेक्चररशिप की तलाश में थे। उन्होंने एम.ए. भी इसीलिए कर रखा था। उनकी यह इच्छा पूरी हुई जुलाई 1958 में। राजनांदगांव में कॉलेज खुल जाने और श्रीशरद कोठारी, अटल बिहारी दुबे तथा प्रमोद कुमार वर्मा के सहयोग से उन्हें दिग्विजय कॉलेज में प्राध्यापक की नौकरी मिल गई थी। इस संदर्भ में वीरेंद्र कुमार जैन को वह लिखते हैं, कि *" जिंदगी में काफी ठुकाई-पिटाई के बाद, अब राजनांदगाँव आ पहुंचा हूँ। यहाँ का कॉलेज नया-नया है। सभी लोग सहयोग की भावना से प्रेरित हैं। काफी आराम से हूँ। पिछली कशमकश और मानसिक तनाव अब यहाँ नहीं है। इसलिए यहाँ का वातावरण सुखद है। सोचता हूँ, राजनांदगाँव मुझे लाभप्रद होगा।"*[26] राजनांदगाँव में वह जीवन के अंत तक रहें, जीवन में आजीविका की यात्रा में मुक्तिबोध कहीं संतोष न पा सकें, उन्हें सुकून मिला तो राजनांदगाँव में ही।

1.1.6- मुक्तिबोध की मृत्यु

मुक्तिबोध का स्वास्थ्य तो नागपुर में ही बिगड़ गया था। उसमें कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। उन्हें चक्कर आते ही थे, बुखार भी रहता था। एक्जिमा भी पहले से ही था, अब उसने जोर पकड़ लिया था। पुस्तक वाली घटना ('भारत: इतिहास और संस्कृति' जिसे मध्य-प्रदेश सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया था) ने उन्हें गहरे रूप से प्रभावित किया। उनके भीतर असुरक्षा का भाव, जो किसी न किसी अंश में नागपुर से ही उनमें मौजूद था और जिनके कारण वे अपने करीब आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पहले संदेह

---

[25] संपादक- जैन,नेमिचन्द्र, मुक्तिबोध समग्र (खंड–7), राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण-2019, पृष्ठ-संख्या-467

[26] वही, पृष्ठ-संख्या-437

की दृष्टि से देखते थे, बहुत बढ़ गया। वे निरंतर दुःस्वप्नों से घिरे रहने लगे। स्वास्थ्य चौपट हो ही चुका था। शमशेर बहादुर सिंह **'चाँद का मुँह टेढ़ा है'** की भूमिका में उनकी बीमारी के संदर्भ में लिखते हैं कि *" 7 फरवरी, 64 पक्षाघात का पहला प्रहर। दिल्ली से मध्य-प्रदेश के मुख्यमंत्री मिश्रजी के नाम 'एक तार: मुक्तिबोध की चिकित्सा शासकीय स्तर पर हो!' तार भेजने वाले: मैथिलीशरण गुप्त, काका कालेलकर, मामा वरेरकर, जैनेन्द्र कुमार , आ. रा. देशपांडे 'अनिल' बच्चन, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, अशोक वाजपेयी, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, सुरेश अवस्थी, कमलेश्वर, अजित कुमार, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा इत्यादि। मार्च में भोपाल के हमीदिया अस्पताल में मुक्तिबोध का दाखिला। मध्य प्रदेश के श्रेष्ठ चिकित्सकों द्वारा इलाज। स्वास्थ्य में कुछ सुधार। सेरीब्रल थॉमबॉसिस निदान। 27 मई को बिस्तर में कमजोर पड़े मुक्तिबोध पूछ रहे हैं; " नेहरू की तबीयत कैसी है?" शांताबाई कहती हैं: "अच्छी है, अच्छी है! आप सो जाइए!..."*[27] इसके बाद 6 जून को डॉक्टर उन्हें 'ट्यूबर्कुलर मेनिजाइटिस' से ग्रस्त बताते हैं, 15 जून को उनकी बेहोशी बढ़ती है, थोड़ी थोड़ी पहचान अभी शेष है। 17 जून की शाम को लालबहादुर शास्त्री के लॉन पर, बच्चन, माचवे, अक्षय कुमार जैन और नए सब कवि उनसे मिलने का इंतजार कर रहें होते हैं। प्रधानमंत्री 10-11 बजे दिन भर काम से थके - उसी आस्थापूर्वक विनम्रता से दोनों हाथ जोड़े आते हैं, कहते हैं- *" आप तो सब साहित्य के पुजारी हैं। मैं क्या कर सकता हूँ।"*[28] बच्चनजी पूरी स्थिति से उन्हें अवगत कराते हैं, और मुक्तिबोध को दिल्ली इलाज के लिए बुला लिए जाने की बात तय होती है। दूसरे दिन मध्य-प्रदेश के प्रमुख चिकित्सक को ट्रंक कॉल गया। सहायता के लिए 500/ रुपय पहुंचे। इसकी भी व्यवस्था कर दी गई, कि उन्हें यहाँ वातानुकूलित डिब्बे में लाया जाए। 19 जून को श्रीकांत वर्मा और रघुवीर सहाय फिर शास्त्री जी से मिलें। 24 जून को फोन आया कि 25 को सवेरे ग्रांड ट्रंक से मुक्तिबोध

---

[27] मुक्तिबोध,गजानन माधव, चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई-दिल्ली, बीसवाँ संस्करण : 2010, पृष्ठ-संख्या-12

[28] वही, पृष्ठ-संख्या-12

आ रहें हैं। स्टेशन पर सभी उपस्थित हैं। गाड़ी आती है; लेकिन मुक्तिबोध नहीं हैं। गहरी निराशा होती है, पता लगता है कि कल आएंगे। 26 जून को दिल्ली स्टेशन पर डेढ़ घंटा लेट ग्रांड ट्रंक। भयानक गर्मी और उमस... गाड़ी आती है। एयरकन्डीशंड डिब्बे में मुक्तिबोध पड़े हैं। साथ में हरिशंकर परसाई आएं हैं, मुक्तिबोध एम्बुलेंस के जरिए मेडिकल इंस्टिट्यूट में पहुंचाये जाते हैं। *" 29 जून को उनकी स्थिति में कुछ सुधार होता दिखाई दिया। उन्होंने चाय मांगी। एक महीने बाद चाय पी। उम्मीद की जाने लगी कि वे अब ठीक हो जाएंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उनकी तबीयत फिर से बिगड़ने लगी और बिगड़ती चली गई। चेतन से अवचेतन की ओर बढ़ते देखकर अंततः भारत के सबसे बड़े चिकित्सा संस्थान के डॉक्टरों (डॉ. विग, डॉ. विरमानी, डॉ. टंडन और डॉ. बजाज) ने 'कहीं बड़ी भारी चूक हो गई थी' कहते हुए अपने हाथ खड़े कर दिए। 11 सितंबर 1964 को रात के 9 बज कर 5 मिनट पर उनका देहांत हो गया। 7 फरवरी 1964 को वे पछाड़ खाकर गिर पड़े थे। तब उनपर जो पक्षाघात हुआ था, उससे वे उबर नहीं पायें।"*[29]

[29] ठाकुर,रमेश, अलक्षित मुक्तिबोध, प्रभाकर प्रकाशन, ईस्ट-दिल्ली, संस्करण-2021, पृष्ठ-संख्या-42

1.2-मुक्तिबोध का व्यक्तित्व

मुक्तिबोध का व्यक्तित्व एक ईमानदार व्यक्तित्व है। जो किसी भी तरह के चारित्रिक द्वैत को स्वीकार नहीं करता। उनकी रचनाएं, उनका जीवन इस तथ्य का साक्षी रही हैं। जीवन और सृजन में वही व्यक्ति ईमानदार हो सकता है, जिसके पास संस्कार रुपी ईमान का डंडा हो। मुक्तिबोध जीवन और सृजन को अभिन्न मानते रहे हैं। इस लिहाज से उनकी रचनात्मकता भी उनके व्यक्तित्व को बखूबी उदघाटित करती है। मुक्तिबोध के सन्दर्भ में श्रीकांत वर्मा ने कहा है, कि *''किसी और कवि की कविताएं उसका इतिहास न हों, मुक्तिबोध की कविताएं अवश्य उनका इतिहास हैं, जो इन कविताओं को समझेंगे उन्हें मुक्तिबोध को किसी और रुप में समझने की जरुरत नहीं पड़ेगी।''*[30] यह ठीक है, कि श्रीकांत ने उनकी कविता को उनका इतिहास कहा लेकिन उसमें उनके व्यक्तित्व की अनन्य झांकियां भी मौजूद हैं; इससे इनकार नहीं किया जा सकता। बहरहाल मुक्तिबोध के व्यक्तित्व के संदर्भ में पड़ताल करते हुए, उनके व्यावहारिक जीवन व्यापार में हस्तक्षेप किए बगैर उन्हें मुकम्मल रुप में नहीं जाना जा सकता। दूसरी तरह से कहें तो कह सकते हैं, कि व्यावहारिक जीवन प्रसंगो के द्वारा और ज्यादा प्रमाणिक रुप में उनके व्यक्तित्व को समझा जा सकता है। मुक्तिबोध पर ज्यादा प्रभाव उनके पिता का रहा है। शांताराम क्षीरसागर की टिप्पणी इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य है, वह कहते हैं, कि *''मुक्तिबोध के पिता श्री माधवरावजी मुक्तिबोध का व्यक्तित्व पुलिस विभाग में अपवाद की सीमा तक विशिष्ट था। कीचड़ में कमल की तरह विकसित। एक ओर वे पूजापाठी, धर्मनिष्ठ व्यक्ति*

[30] मुक्तिबोध,गजानन माधव, चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई-दिल्ली, बीसवाँ संस्करण : 2010, पृष्ठ-संख्या-9-10

थे,...दूसरी ओर वे एक निर्भीक और न्यायनिष्ठ पुलिस ऑफिसर थे, अपनी ड्यूटी के पाबन्द और कानून व्यवस्था की रक्षा में कठोरता से तत्पर। उस जमाने के प्रायः सभी गम्भीर मामलों की छान-बीन के दौरान मैं भी उनके साथ रहा था, इसलिए जानता हूँ कि कैसे-कैसे प्रलोभन उन्हें नहीं दिये गए, मगर उनकी दृढ़ता सदैव कायम रही, विचलित वे हो ही नहीं सकते थे। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव मुक्तिबोध के व्यक्तित्व एवम् संस्कारों के निर्माण में सामाजिक रुप से रहा है।"[31]

यह आकास्मिक नही है, कि मुक्तिबोध ने आगे चलकर उनपर कविताएं भी लिखी और एक में कहा --

"पित: तुम्हारी वीर-जीवन इतिहास-कथा

देती है मेरी प्रेरणाओं की दिशाए बता

आँसू पोंछ जातीं वे

धीरज बंधातीं वे

संग्राम का शिल्प मुझे अचूक सिखा जातीं वे

संघर्ष में मुझे देती सत्य की महान व्यथा।"[32]

इसमें संदेह नहीं कि मुक्तिबोध जीवन भर संघर्ष करते हुए सत्य की महान व्यथा का ही वरण करते रहें। जिद्दीपन उनके व्यक्तित्व में इस तरह घुला-मिला रहा, कि फिर उनसे कभी अलग न हुआ। मुक्तिबोध के इस वैयक्तिक पहलू को समझने के लिए उनका वैवाहिक प्रसंग महत्वपूर्ण है। जिसमें उनके प्रेम विवाह के

---

[31] वर्मा,मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-104-105

[32] संपादक- जैन,नेमिचन्द्र, मुक्तिबोध समग्र (खंड–1), राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण-2019, पृष्ठ-संख्या-360

प्रस्ताव को उनके पिता द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है और मुक्तिबोध घर छोड़ देते हैं, और भाग कर अपने मित्र शांताराम के पास चले जाते हैं। वह अपनी जिद्द को दृढ़ता पूर्वक उनके सामने रखते हुए कहते हैं कि *"मेरा विवाह शांता के साथ ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। यदि इसे स्वीकार नहीं किया गया तो मैं अपने पिता जी के पास कभी नही जाऊंगा, चाहे कहीं जाना पड़े।"*[33]

मुक्तिबोध घूमने-फिरने के कायल रहे हैं। अपने मित्र शांताराम के साथ गश्त पर लगी उनकी ड्यूटी पर वह भी घूमने जाया करते थे। मुक्तिबोध को रात्रि बहुत प्रिय रही है, इस रात्रि के कई दृश्य उनकी कविताओं में मौजूद है- *" यह छाँह मेरी सर्वगामी है!/ हवाओं में अकेली साँवली बेचैन उड़ती है/"*[34] जैसी पंक्तियाँ मुक्तिबोध के बाह्य के आभ्यंतरीकरण से ही उपजी हैं। विवाह के उपरान्त अर्थात् लौटने पर एक घटना जो मुक्तिबोध की लापरवाह घुमक्कड़ वृत्ति पर बहुत अच्छा प्रकाश डालती है। अपनी स्मृति के आधार पर शांताराम बताते हैं, कि चुंगी पर बस खड़ी हुई तो उन्हे थोड़ी दूर घूम आने की सूझी - *"मुझे साथ लेकर वे घूमते-घामते दूर निकल गए। उन्हें खयाल नहीं रहा कि दूल्हा होने के कारण उनका महत्वपूर्ण स्थान है। और लोगों ने भी हमारी ओर ध्यान नहीं दिया और बस घर पहुँच गई। द्वार-प्रवेश के समय दूल्हे मियां की खोज शुरु हुई। ढूँढ़ने के लिए सिपाही दौड़ाए गए। घर पहुँचने पर पिता जी सख्त नाराज मिले। मुक्तिबोध चुप रहे। ऐसे अवसरों पर चुप्पी साध लेना उनकी आदत थी।"*[35] दरअसल मुक्तिबोध कुछ फक्कड़ स्वभाव के जीव थे, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। उनके बेपरवाह व्यक्तित्व और चाय के प्रति दिवानगी को एक रोचक प्रंसग के जरिये जाना जा सकता है। शांताराम अपने साक्षात्कार में इस प्रंसग की चर्चा करते हुए कहते

---

[33] वर्मा,मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-109

[34] मुक्तिबोध,गजानन माधव, प्रतिनिधि कविताएं, संपादक - वाजपेयी,अशोक, राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, चौथा संस्करण: 1991, पृष्ठ-संख्या-65

[35] वर्मा,मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-110

हैं, कि *"चंद्रकांतजी की शादी में शामिल होने के लिए हम सब सपरिवार उज्जैन आ रहे थे, तभी का यह किस्सा है, कि वे नागपुर और इटारसी के बीच के एक छोटे से स्टेशन पर चाय के चक्कर में गाड़ी से रह गए थे। मैं उन्हें बराबर कहे जा रहा था, कि जल्दी कीजिए, गाड़ी छूट जाएगी, मगर वे तसल्ली से चाय पीते रहे; 'अरे साहब, गाड़ी कैसे चली जायेगी, हम चाय पी रहें हैं। 'वे चाय पीते रहे और गाड़ी खिसक चली।"*[36] इसी संदर्भ में मुक्तिबोध के छोटे भाई शरतचंद्र बताते हैं, कि *"भाई साहब डिसिप्लिन्ड शायद ही रह सके। यह इनडिसिप्लिन्ड उनकी पोइट्री में भी है। मैं कहता रहा - यूं आप चाय के सहारे दो-दो, चार-चार दिन भूखे रहकर कैसे चलाएंगे? ऐसे तो दस साल भी न पकड़ोगे। वह माने नहीं। और...और फिर वही हुआ। बहुत बार सिचुएसन खुद क्रिएट करते थे, उससे फेस दूसरे। होता यह था कि वह घरेलू मामलों पर तो बात भी करना मुनासिब नहीं समझते थे। हां, आप ठीक ही कहते हैं, वह उन्हें जानबूझकर अवॉइड करते थे। सुनकर उन्हें ठेस पहुंचती थी और विशेष कुछ सुधार करने की ओर उनकी गति थी नहीं।"*[37] विलायतीराम घेई जो उनके सहपाठी रहे हैं, वे बताते हैं, कि *"उन्हें स्वप्न बहुत दिखाई देते थे। शायद अपने स्वप्नों को काव्यमय भाषा में सुनाते समय वे कल्पना का थोड़ा-बहुत मिश्रण भी कर दिया करते थे।"*[38] स्वप्न उनके लिए विशेष महत्व का रहा है, यह उनकी कविताओं में देखा जा सकता है।

मुक्तिबोध का मित्र होना सहज नहीं था। वह किसी को भी मित्र नहीं बना लेते थे, बल्कि देखा यह गया है, कि उनके ज्यादातर मित्र साहित्यिक अभिरुचि वाले ही रहे हैं, और उसमें भी वैचारिक साम्यता के आधार पर उनका आकर्षण ज्यादा रहा है। प्रभाकर माचवे एक साक्षात्कार में अपने और मुक्तिबोध के बीच

---

[36] वही, पृष्ठ-संख्या-111

[37] वही, पृष्ठ-संख्या-76

[38] वही, पृष्ठ-संख्या-113

की घनिष्टता को व्यक्त करते हुये कहते हैं, कि *"आत्मीयता का तो यह हाल था कि मेरे कमरे की चाबी प्राय: उन्हीं के पास रहती थी। हम एक दूसरे के कपड़े अदल-बदलकर पहन लिया करते थे। वैसे थे वे लापरवाह, मस्तमौला। एक बार चाबी खो दी और मुझे खबर तक नहीं की। पैसे खर्च करने में उन्हें आनंद आता था – खासतौर से मित्रों के साथ चाय -पानी का बिल अदा करना वे अपना ही फर्ज समझते थे।''*[39] मुक्तिबोध का अपने स्वजन, आत्मीय मित्रों के प्रति जो भाव रहा है, उसे नरेश मेहता ने अपनी पुस्तक **'मुक्तिबोध : एक अवधूत कविता'** में इस प्रकार स्पष्ट किया है, वह लिखते हैं, कि *"वह अपने आत्मीय स्वजन के लिये लगभग शिशुवत उत्कण्ठित, चिन्तित या लालायित रहते थे। मित्र, उत्सव का पर्याय होता था। सामने बैठाकर बातें, सिर्फ बातें और वह भी इतनी तन्मयता से, जैसे आपके थके-हारे पैरों को वह ठण्डे जल से प्रक्षालित कर रहे हैं, और आपकी यात्रा थकान के लिये अपने को दोषी भी अनुभव कर रहे हैं।''*[40]

मुक्तिबोध के लिये मित्र साहचर्य बेहद अहम भी रहा है। प्रमोद वर्मा ने लिखा है, कि *" दोस्त मुक्तिबोध की अहम जरुरत थे। इन दोस्तों का साहचर्य मुक्तिबोध को भावदीप्त करता और विचारदीप्त भी। रचना दीप्त भी।"*[41]

राजेन्द्र मिश्र के साथ एक साक्षात्कार के दौरान मुक्तिबोध की पत्नी शांताबाई मुक्तिबोध उनके गृहस्त व्यक्तित्व के बारे में बताती हैं *कि " सबका बहुत अधिक ख्याल रखते थे। मेरा और बच्चों का भी। समय आने पर घर का सब काम नि:संकोच करते थे। मैं अक्सर बीमार रहती थी। वे घर की व्यवस्था की पूरी देख-रेख करते थे। आप जानते हैं कि आर्थिक दृष्टि से हम लोग सदैव परेशान रहते थे। वे बच्चों के लिये*

---

[39]वही, पृष्ठ-संख्या-124

[40] मेहता, नरेश, मुक्तिबोध: एक अवधूत कविता, लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद, संस्करण : 2012, पृष्ठ-संख्या-38

[41] जैन,कांतिकुमार, महागुरू मुक्तिबोध: जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर, सामयिक प्रकाशन, नई-दिल्ली, संस्करण : 2018, पृष्ठ-संख्या-40

बहुत कुछ करना चाहते थे। जब कभी नहीं कर पाते, दुखी हो जाते और हट जाते थे। मित्रों का साहचर्य उन्हें बेहद पसंद था। वे सब हमारे परिवार के ही अंग थे। बाहर से आये मित्र जब कहीं और ठहर जाते तो नाराज़ होते थे।"[42] यह उनके स्वभाव में था । मुक्तिबोध के जीवन में आर्थिक समस्या तो सदैव ही बनी रही, राजनांदगाँव जाकर ही कहीं उन्हें थोड़ा मनोवांछित जीवन मिला था । मुक्तिबोध ने अस्थायी नौकरियां बहुत की और विभिन्न कारणों से उससे छिटकते भी रहे, जिसका कारण शरतचन्द्र बताते हैं कि *" वे प्राय: विरोध सहन नहीं कर सकते थे। मेरा अनुभव तो यही है। विरोध की स्थिति में वह अलग हो जाते थे। नौकरियां छोड़ने के पीछे भी यही हुआ । काम वह पूरी लगन से करते थे, किंतु जरा से विरोध पर चिपट जाते थे । रेडियो की नौकरी छूटी नहीं, स्वयं छोड़ी । नागपुर छोड़कर भोपाल जाना वह स्वयम् नहीं चाहते थे। कुछ बहुत अधिक थकान रही होगी । बाद में 'नया खून' से भी अलग हो गये ... झगड़ा वही अपने आप को एडजस्ट न कर पाने का होगा ।"*[43] दरअसल मुक्तिबोध एक विद्रोही प्रवृत्ति के व्यक्ति रहे हैं। जिसने न जीवन में समझौता किया और न ही अपनी रचनात्मकता में; वह जिन्दगी अपनी शर्तों पर जीने वाले व्यक्ति रहे हैं। इस सन्दर्भ में शरच्चन्द्र बताते हैं, कि *"समझौता न उन्होंने स्वास्थ्य के नियमों से किया न अर्थशास्त्र के सिद्धांतों से । क्या यह विद्रोही का लक्षण नहीं है ? व्यक्तिश: वे आइडिलिस्टिक थे, फैक्चुअल नहीं । विचारत: बौद्धिक और विश्लेषक ।"*[44] मुक्तिबोध बौद्धिक रुप से बहुत सशक्त रहे हैं, लेकिन यह तीक्ष्णता उन्होंने कहीं से प्राप्त नहीं किया अपितु उसे निरन्तर विकसित करते हुए अर्जित किया था। उनके मित्र विलायतीराम घेई उनके बारे में कहते हैं, कि *" मेरे विचार से वह बहुत ही समझदार व्यक्ति थे। आदमी को*

---

[42] संपादक- पाण्डेय,रतनकुमार, अनभै (पत्रिका), अनंग प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष:12 अंक : 46-47, अप्रैल-सितंबर-2015, पृष्ठ-संख्या-145

[43] वर्मा,मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-77

[44] वही, पृष्ठ-संख्या-87

पहचानने और उसके स्वभाव का विश्लेषण करने तथा व्यक्तित्व को गहराई से परखने में भी वे बहुत निपुण थे । किन्तु स्वभावत: वे व्यावहारिक बिल्कुल नहीं थे। अपनी आदतों के वशीभूत वे दुनियावी मामलों में कुशलता नहीं बरतते थे, बल्कि समस्याओं से कतराते थे। दुनियां की समझ उन्हें खूब थी, लेकिन खुद दुनियादार वे नहीं हो पाते थे ।"[45]

मुक्तिबोध ने अपने एक लेख **'मेरी मां ने मुझे प्रेमचन्द का भक्त बनाया'** में अपने व्यक्तित्व का उद्घाटन किया है। जिसमें दुनियां के साथ सामंजस्य का गणित न बिठा पाने के कारणों का उल्लेख मिलता है। अपनी मां को सम्बोधित करते हुये वह लिखते हैं कि *" उसने वस्तुत: भावना और सम्भावना के आधार पर मुझे प्रेमचन्द पढ़ाया । इस बात को वह नहीं जानती है कि प्रेमचन्द के पात्रों के मर्म का वर्णन-विवेचन करके वह अपने पुत्र के हृदय में किस बात का बीज बो रही है। पिताजी मेरे देवता हैं, माँ मेरी गुरू है। सामाजिक दम्भ, स्वाँग, उँच-नीच की भावना, अन्याय और उत्पीड़नों से कभी भी समझौता न करते हुये घृणा करना उसी ने मुझे सिखाया । लेकिन मेरी प्यारी श्रद्धास्पद माँ यह कभी न जान सकी कि वह किशोर-हृदय में किस भीषण क्रान्ति का बीज बो रही है, कि वह भावनात्मक क्रान्ति के किस उचित अनुचित मार्ग पर ले जाएगी , कि वह किस प्रकार अवसरवादी दुनिया के गणित से पुत्र को वंचित रखकर, उसके परिस्थिति सामंजस्य को असंभव बना देगी ।"*[46] मुक्तिबोध सफलता की चक्करदार सीढ़ियों को कभी अपना नहीं सकें, उसका वरण नहीं कर सकें, यहीं उनकी ट्रेजडी रही, अपनी एक कविता 'मैं तुम लोगों से दूर हूँ' में उन्होंने कहा भी है, यथा -- *"असफलता का धूल-कचड़ा ओढ़े हूँ/ इसलिए कि वह चक्करदार जीनों पर मिलती है / छल-छद्म धन के/ किन्तु मैं सीधी-सादी पटरी-पटरी दौड़ा हूँ/ जीवन की। / फिर भी मैं अपनी सार्थकता में खिन्न हूँ/ निज से अप्रसन्न हूँ/ इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए/ पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर*

---

[45] वही, पृष्ठ-संख्या-115

[46] संपादक- जैन,नेमिचन्द्र, मुक्तिबोध समग्र (खंड–6), राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण-2019, पृष्ठ-संख्या-510

चाहिए/ वह मेहतर मैं हो नहीं पाता/ पर, रोज कोई भीतर चिल्लाता है/ कि कोई काम बुरा नहीं बशर्ते की आदमी खरा हो"[47]

[47] मुक्तिबोध,गजानन माधव, प्रतिनिधि कविताएं, संपादक - वाजपेयी,अशोक, राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, चौथा संस्करण: 1991, पृष्ठ-संख्या-84

द्वितीय अध्याय :

2- मुक्तिबोध के पत्रों में निजता और उनकी साहित्यिक वैचारिकी

2.1 - मुक्तिबोध के पत्रों में निजता

2.2 - मुक्तिबोध के पत्रों में साहित्यिक वैचारिकी

1.2-मुक्तिबोध के पत्रों में निजता

"पत्र-साहित्य वैयक्तिय विधा है। उत्तम पत्र न तो प्रकाशन के लिए लिखे जाते है; न उनमें सर्वजनीनता होती है। पत्र हमारी अपनी चीज है-अन्तरंग गुप्त । जिसके लिए लिखा गया है, उसे छोड़कर दूसरा पढ़ेगा भी नहीं, इस विश्वास के साथ हम ह्दय खोलकर लिखते हैं । अगर हमें यह भान हो जाए कि एकांत में लिखा गया पत्र कई लोगों की निगाह से गुजरेगा तो हम उसे या तो लिखे ही नहीं या फिर उसमें कृत्रिमता आ जाएगी ।"[48]

आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर मुक्तिबोध द्वारा लिखे गए पत्रों में उनकी निजता बिना किसी लाग-लपेट के अर्थात् पूरी निश्छलता से प्रकट हुई है। उनका मित्र के प्रति आत्मीय स्वर, उनके भाव, उनका जीवन संघर्ष, उनकी साहित्य साधना, जीवन के बेहद निजी प्रसंगों को उनके पत्रों में स्थान मिला है। यह तो सर्वविदित है, कि मुक्तिबोध का जीवन बेहद कष्टमय और संघर्ष से भरा रहा है। लेकिन उनकी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति उनके पत्रों से ही प्राप्त हो सकती है। मुक्तिबोध ने ज्यादातर पत्र नेमिचन्द्र जैन को लिखें हैं। जिसमें बहुतेरे पत्र अंग्रेजी भाषा में लिखे गए हैं, तो कुछ हिन्दी में लिखे पत्र भी प्राप्त होते हैं। नेमिचन्द्र जैन के अलावा वीरेन्द्र कुमार जैन, अज्ञेय, माखनलाल चतुर्वेदी, शमशेर बहादुर सिंह, नामवर सिंह, नरेश मेहता, श्रीकांत वर्मा, प्रमोद कुमार वर्मा, अग्नेश्का सोनी, मलय, प्रभाकर माचवे, और

---

[48] संपादक- हाड़ा, माधव, कथेतर, साहित्य अकादेमी प्रकाशन, नई-दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2017, पृष्ठ-संख्या-203

भारतभूषण अग्रवाल आदि-आदि लोगों को सम्बोधित पत्र प्राप्त होते हैं। जिसमें मुक्तिबोध की निजता बिना किसी कृत्रिमता के प्रकट होती है।

मुक्तिबोध के जीवन की अंतरंगता में प्रवेश के लिए यहाँ उनके अंतरंग मित्र नेमिचन्द्र जैन को ही पहले पहल याद करना जरूरी है, क्योंकि इन्हीं को लिखे गए पत्र में मुक्तिबोध अपना अंतर बाह्य पूरी तरह से खोल कर रख देते हैं। जीवन की छोटी बड़ी सभी प्रकार की बातें वह उनसे करते रहे हैं। मुश्किल के दिनों में वह मुक्तिबोध के जीवन की सांस तक बन जाते हैं। उनका एक पत्र 21/06/1945 का इस संदर्भ में देखा जा सकता है। जिसमें उन्होंने नेमिचन्द्र जैन को संबोधित करके लिखा है, कि *"well your reply is an necessary as air and water and your M.O. the stick to beat the enemy out."*[49] उनके लिए नेमि जी का जवाब उतना ही जरुरी था, जितना जीने के लिए पानी और हवा और उनका मनी ऑर्डर आर्थिक तंगी रुपी दुश्मन को बाहर का रास्ता दिखाने का संबल। मुक्तिबोध की आर्थिक समस्या बराबर बनी रहती थी। अपने आत्मीय मित्र नेमिचन्द्र जैन से 01/07/1945 के पत्र में वह कहते है कि *"will you be able to send 200? will you be send at all? these are the questions which are source of great anxiety to me."*[50] *आगे इसी पत्र में वह कहते हैं, कि "but if nothing can be done, you must send as much as you can. I will leave other debts as they are and will try to remove them afterwards. No more continuation of Ujjain life."*[51]जीवन का संघर्ष इतना है, कि मुक्तिबोध को पिता बनने का आयोजन भी आपत्ति मालूम पड़ता है। सरस्वती प्रेस, बनारस से लिखे 7/11/1945 के पत्र में नेमि बाबू से अपने मन का हाल प्रकट करते हैं, और कहते हैं, कि *"पिता बनने का मेरा आयोजन बस समझ लीजिए कि एक आपत्ति है। और अन्तिम आश्रय तो अपना धैर्य है ही। यदि*

[49] संपादक- जैन, नेमिचंद्र, मुक्तिबोध समग्र (खंड-7),राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण: 2019, पृष्ठ-संख्या-323
[50] वही, पृष्ठ-संख्या-326
[51] वही, पृष्ठ-संख्या-326

जिन्दगी में ठिठुरते ही रहना है, तो इसके सिवा कि रोओ और कोई चारा तो है ही नहीं। इसलिए, अब तो बिल्कुल petit-bourgeois दृष्टिकोण, यानी दो हँस के मीठी बातें कर लो, परस्पर का सौहार्द और स्नेह जता लो, और अधिक से अधिक दो कप चाय पी लो, इससे अधिक और कुछ तो है ही नहीं। न हो सकता है। इधर रमेश काफी बीमार था और मैं भी। लेकिन उसे उज्जैन नहीं भेजना चाहता। जैसा है वैसा चलेगा।''[52] एक अन्य 30/10/1945 के पत्र में मुक्तिबोध अपने जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले नेमि बाबू के महत्व को कविता के बहाने मार्मिक ढंग से व्यक्त करते हैं, यथा--

''याद आती है तुम्हारी तैरती सी,

राह से जिस

कभी कोई आ नहीं सकता

न माता, पुत्र या पत्नी, पिता''[53]

और फिर आगे अपने जीवन के बारे में कहते हैं, कि *''मेरी बेसब्र, बेकाबू जिन्दगी जब किसी की जरुरतमन्द हो उठती है, तो पहले वह आपको याद कर लिया करती है।''*[54] मुक्तिबोध की आत्मीयता की प्रगाढता इतनी है, कि 27/04/1955 के एक पत्र में वह लिखते हैं, कि *''रुह मंडराती रही, वहाँ जहाँ आप बैठते हैं।''*[55] आगे इसी पत्र में उनसे साक्षात मिलन के मानसिक विभ्रम को व्यक्त करते हुए लिखते हैं, कि *''अभी भी जब कोई रिक्षा मेरी गली के मुहाने सहसा खड़ा होता सा दिखता हैं, मन सोचता है- हो- न-हो,*

---

[52] वही, पृष्ठ-संख्या-331
[53] वही, पृष्ठ-संख्या-338

[54] वही, पृष्ठ-संख्या-338
[55] वही, पृष्ठ-संख्या-412

आप ही उस रिक्षे से उतर रहे हैं। आजकल साक्षात् मिलन का कार्य मानसिक विभ्रम ने अंगीकार कर लिया हैं।''[56]

20/09/1952 को लिखे एक पत्र में अपने प्यारे मित्र वीरेन्द्र को सम्बोधित करते हुए अपना हाले बयां करते हैं, कि *''हालत तो खराब है ही, पर जिंदगी में बडी जानदारी है। इसी के सहारे, जहाँ बनता है, दुलत्तिया झाड़ देता हूँ। भौतिक असफलताओ की चट्टानों पर टकराकर भी, हिम्मत नही हारा हूँ। खुदा की फज्ल से चार बच्चे हैं। सबके प्यारे हैं। लिखाई खूब चल रही है, डटकर, भले ही प्रकाश में न आए।''*[57]

10/03/1954 के एक पत्र में जिंदगी कि कटुता और मानवता की मिठास को महसूस करते हुए वीरेन्द्र से कहते हैं, कि *''जिन्दगी बड़ी तल्ख है, लेकिन मानव की मिठास का क्या कहना! जी होता हैं, सारी जिन्दगी एक घूँट में पी ली जाए।''*[58] मुक्तिबोध जीवन की तल्खी से जद्दोजहद के लिए अपने आत्मीय मित्रों के साहचर्य को विशेष महत्वपूर्ण मानते हैं। वह उनके लिए संबल की तरह है, मित्र वीरेन्द्र से ही वह कहते हैं, कि *''बहुत सी बाते कहने की है, बहुत सी तुमसे सुनने की। अगर कंधे से कंधा मिला रहे, बाँह से बाँह मिली रहे और मन से मन, तो फिर क्या बात है! फिर कुछ झेला जा सकता है। और तुम्हारा पत्र पाकर ठीक ऐसा ही लगा।''*[59]

31/08/1958 के पत्र में एक लम्बे संघर्ष के बाद जीवन में आई सुखद स्थिति को व्यक्त करते हुए, मुक्तिबोध वीरेन्द्र से कहते हैं, कि *''जिन्दगी में काफी ठुकाई-पिटाई के बाद, अब राजनाँदगांव आ पहुंचा हूँ। यहाँ का कॉलेज नया-नया है। सभी लोग सहयोग की भावना से प्रेरित हैं। काफी आराम से हूँ। पिछली*

---

[56] वही, पृष्ठ-संख्या-412
[57] वही, पृष्ठ-संख्या-434

[58] वही, पृष्ठ-संख्या-436
[59] वही, पृष्ठ-संख्या-436

कशमकश और मानसिक तनाव अब यहाँ नहीं है। इसलिए यहाँ का वातावरण सुखद है। सोचता हूँ, राजनादगांव मुझे लाभ प्रद होगा।''[60]

अपने श्रध्देय दादा [माखनलाल चतुर्वेदीजी] को लिखे 21/03/1943 के पत्र में मुक्तिबोध अपनी नौकरी की समस्या प्रकट करते हुए कहते हैं, कि *''आपको एक तकलीफ भी देना चाहता था। मुझे नौकरी की तलाश है। मुझे यह शहर छोडना हर प्रकार से जरुरी है। प्रेस का काम मुझे मालूम नहीं, पर सीख सकता हूँ। आपके यहाँ नहीं, तो और कहीं, हिन्दुस्तान में कहीं भी अगर आपकी नजर में कोई भी मेरे योग्य जगह हो तो मुझे चाहिए। आप मेरे लिए कुछ कोशिश कर सकेंगे तो मुझे एक घोर कठिनाई से बचा लेंगे।''*[61]

नागपुर से लिखा हुआ एक पत्र जिसकी तारीख प्राप्त नहीं होती। लेकिन संभवत 57 का ही पत्र है, जो नामवर सिंह को सम्बोधित है। मुक्तिबोध अपने बारे में नामवर सिंह द्वारा टिप्पणी किए जाने पर हार्दिक प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए कहते हैं, कि *"दिल की कहूँ तो यह कि अगर आप मेरे समीप होते तो गले लगा लेता, इसलिए नहीं कि तारीफ हुई है, वरन् इसलिए कि एक सुदूर अजाने कोने में एक समानशील समानधर्मा मिला। समानधर्मा शब्द पर शायद आपको आपत्ति हो, किंतु अपनी कमजोरियों और दोषों में मैं आपको शामिल नहीं कर रहा हूँ।''*[62] एक अन्य पत्र जो 15/05/1958 का है, जिसमें अपने जीवन की अभिलाषा की पूर्ति की सम्भावना देखते हुए नामवर सिंह से कहते है कि *'' सम्भवत: मैं जुलाई में कहीं पास पड़ोस में लेक्चरर हो जाउँगा । वैसे, मेरी बड़ी इच्छा है, कि आप लोंगो के समीप रहूँ, जिससे मैं कुछ पढाई कर सकूँ। हम लोग इधर बहुत पिछड़े प्रदेशों में रहते हैं, और साहित्यिक गतिविधियों से घनिष्ठ सम्पर्क नहीं रख पाते।''*[63] मुक्तिबोध की बनारस के साहित्यिक वातावरण में नौकरी करने की बहुत इच्छा थी, इसीलिए वो

---

[60] वही, पृष्ठ-संख्या-437

[61] वही, पृष्ठ-संख्या-441

[62] वही, पृष्ठ-संख्या-444

[63] वही, पृष्ठ-संख्या-447

नामवर सिंह से कहते है, कि *''यदि बनारस मे मेरे लायक नौकरी मिले तो अवश्य लिखिएगा।''*[64] मुक्तिबोध के लिए साहित्यिक वातावरण से एकांत में रहने पर वह हतोत्साहित होते थे। इसलिए 6/08/1961 के एक पत्र में जो नामवर सिंह को ही सम्बोधित है, अपनी मन:स्थिति प्रकट करते हुए कहते हैं, कि *''आपके पत्र से बहुत प्रोत्साहन मिला। अपने अकेले एकांत में रहने की स्थिति से, आत्मविश्वास की हानि होती है, इसीलिए जरा-सी भी सहानुभूति पाकर, मन को लगता है, कि और भी अच्छा काम हो सकता है।''*[65] दरअसल मुक्तिबोध अपनी लेखनी से शीघ्र ही संतुष्ट नहीं होते थे, उनकी लेखनी उनकी वैचारिकता का ही सह-उत्पाद रहा है। शीघ्र संतुष्ट न होने की ठीक इसी प्रवृत्ति के बारे में तारसप्तक के वक्तव्य में भी वह दूसरी तरह से इसे व्यक्त करते हैं। वह अपनी विकासशील मानसिक स्थिति के बारे में टिप्पणी करते हुए कहते हैं, कि *''यहां यह स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं कि मेरी हर विकास-स्थिति में मुझे घोर असंतोष रहा और है। मानसिक द्वंद्व मेरे व्यक्तित्व में बध्दमूल है। यह मैं निकटता से अनुभव करता आ रहा हूँ''*[66]।

नरेश मेहता को सम्बोधित पहला पत्र 21/03/1956 का प्राप्त होता है। मुक्तिबोध के वह आत्मीय रहे हैं। उनसे उनका घनिष्ठ पारिवारिक सम्बन्ध रहा है, अत्यन्त प्रेम एवं करुणा की भावभूमि पर खड़े होकर नरेश को वह पहले पत्र में लिखते हैं, कि *''नरेश भाई, आओ भुज-भर भेंटो। कई दिनों से लगातार आपकी याद आ रही है। नागपुर में मैं एकदम अकेला, नि:संग। आपकी भाभी भी बुरी तरह याद कर रही थीं। प्रसंग जरा करुण था। जिस सरोज को आप इतने लाड़-प्यार से खिलाते रहे, न रही। छह वर्ष की होकर वह गुजर गई। आपके दिये वो खिलौने अभी तक सामने की अलमारी में बदस्तूर है।''*[67] एक अन्य पत्र जो 15/12/1956 का है, जो मुक्तिबोध के आजिविका संघर्ष को व्यक्त करती है, पत्र में वो लिखते हैं, कि ''

---

[64] वही, पृष्ठ-संख्या-447

[65] वही, पृष्ठ-संख्या-447

[66] संपादक - अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई-दिल्ली, बारहवाँ संस्करण: 2019, पृष्ठ-संख्या-22

[67] संपादक- जैन, नेमिचंद्र, मुक्तिबोध समग्र (खंड-7),राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण: 2019, पृष्ठ-संख्या-449

पत्र लिखने का कारण यह है, कि यदि आपकी नजर में मेरे लिए कोई उचित job हो तो जरुर बताइएगा। दिल्ली से बाहर भी हो तो कोई हर्ज नहीं। हिन्दी के लेक्चरर की जगहें आपकी नजर से यदि गुजरें तो तुरन्त लिखिएगा। इन दिनो मैं एकदम जॉब की तलाश में हूँ। किन्तु jobless नहीं हूँ।''[68] मुक्तिबोध से नरेश मेहता द्वारा कृति पत्रिका के लिये लेखक की किसी भी परिस्थिति पर लेख लिखने के आग्रह की प्रतिक्रिया में एक अज्ञात तारीख के पत्र में मुक्तिबोध ने जो लिखा; वह उनके साहित्यिक संघर्ष एवम् जीवन संघर्ष के दस्तावेज के रुप में देखा जा सकता है, वो कहते हैं, कि *''आपने मुझे एक झंझट में डाल दिया था । लेख लिख दो, चाहे जिस पर लिख दो, लेखक की परिस्थिति पर लिख दो। बड़ी मुश्किल में डाल दिया। लेख कई लिखे। सब अधूरे । अधूरे इसलिये कि जब अपने मित्र के पत्र में लिखना है तो कच्चापन किस काम का। इसलिये, सजा-सँवारकर, बार-बार पैराग्राफ बदल-बदलकर लिखने की कोशिश की । लेकिन जिन्दगी ने आज तक मुझे एकतान छह घण्टे नहीं दिये कि मैं अपनी बात तन्मय और मगन होकर कर सकूं। जितना भी लिखता हूं, मैं टुकड़े-टुकड़े, अलग-अलग लिखता रहता हूं। हमेशा चाहता हूं कि खूब लिखूँ लेकिन लिखूँ कैसे?''*[69] मुक्तिबोध अपनी पुस्तक *'एक सहित्यिक की डायरी'* में भी अपने लेखन की इस समस्या को व्यक्त करते हैं, लेकिन उसमें वह कविता की प्रदीर्घता और उसके निरन्तर संशोधन की बात करते हैं।

श्रीकांत वर्मा को सम्बोधित अक्टूबर या नवम्बर सन 1956 के एक पत्र में मुक्तिबोध लिखते हैं, कि *''वैसे मैं नागपुर एकदम छोड़ूँ भी कैसे। बाल बच्चेदार आदमी होने के अलावा, मेरे माता-पिता भी हैं, और मुख्यत: कर्ज लदा है। इस कर्ज को कैसे अदा करूँ!! इसी धुन में रहता हूं। पठानों से कर्ज लेते-लेते, जब हिन्दुओं से लेने लगा तो पाया कि वे पठानों से भी बुरे होते हैं। बड़े हरामी, बड़े पाजी। कुछ न पूछो। रेडियो की नौकरी की लगभग एक चौथाई रकम ब्याज में जाती थी । अभी मैंने सिर्फ सौ रुपये चुकाये हैं। कुछ ही*

---

[68] वही, पृष्ठ-संख्या-449

[69] वही, पृष्ठ-संख्या-450

महीनों में और दूंगा । आगे चलकर, मैं इन लोगों पर उपन्यास जरूर लिखूँगा ।”[70] मुक्तिबोध भले ही अपने जीवन में उपर्युक्त विषय वस्तु पर उपन्यास न लिख पायें हो, लेकिन उन्होंने अपने इस अनुभव को कविता में जरूर जगह दी। एक अन्य पत्र जो 01/02/58 का है, जिसमें मुक्तिबोध ‘नया खून’ साप्ताहिक पत्रिका के पीछे किये जाने वाले दिन-रात की मेहनत और उसके कारण स्वास्थ्य के चौपट होने का हाल श्रीकांत से बयां करते हुए कहते हैं, कि *“नया खून की नौकरी रात के डेढ-डेढ, दो-दो बजाती है। शरीर में शक्ति का अभाव है। जब तक यह नौकरी छोड नहीं पाता, तब तक हालत ऐसी ही रहने वाली है। स्वास्थ्य एकदम चौपट है, और बड़ी-बड़ी फिक्रें लग गई हैं।”*[71] नि:संदेह मुक्तिबोध दुर्दम्य जिजीविषा वाले व्यक्ति रहें हैं। अपने आत्मीयों के प्रति उनकी रागात्मकता छोटे-बड़े के भेद को मिटा देती है, इस लिहाज से उनका 20/02/1964 का पत्र देखा जा सकता है, जिसमें वह श्रीकांत को लिखते हैं, कि *“आपके पत्र के उत्तर के लिए कहाँ से शब्द खोजूँ। केवल इतना ही कह सकता हूँ कि आपके प्रेम को प्राप्त करने की वास्तविक पात्रता यदि मुझमें उत्पन्न हो सके तो मैं अपने को धन्य समझूंगा।”*[72] आगे इसी पत्र में बीमारी में पड़े मुक्तिबोध के स्वाभिमान की झलक मिलती है, जब वे कहते हैं, कि *“आपसे, आप लोगों से पैसों को आखिर क्यों न स्वीकृत करुँगा । केवल इसी बात का ध्यान रखिएगा, मेरी बीमारी की विज्ञापना न हो, करुणा-भाव उत्पन्न करने के लिए ताकि एक लेखक की सहायता हो । ऐसा न करना भाई, जिससे मेरी स्थिति जो वस्तुत: दयनीय है, करुणा-जनक भी हो उठे। मैं अपने रोग के नाम से कोई चंदा नहीं चाहता।*

[70] वही, पृष्ठ-संख्या-461-462

[71] वही, पृष्ठ-संख्या-467

[72] वही, पृष्ठ-संख्या-483

वैसे दिल्ली वालों से जो भी सहायता मिलेगी, मैं अवश्य स्वीकार करूँगा। आखिर उस मदद की जरुरत तो हुई है।"[73]

मुक्तिबोध का विष्णुचन्द्र शर्मा के साथ भी पत्राचार रहा है। उनकी पत्रिका 'कवि' में भी वह प्रकाशित होते रहें हैं, अपने 02/04/1957 के एक पत्र में मुक्तिबोध उनसे कहते हैं, कि "अगर नागरी प्रचारिणी सभा में मुझे जगह मिल सकती हो तो क्यों नहीं मुझें दिलवा देते?" आगे इसी पत्र मे वह अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहते है कि *"अध्ययन-अध्यापन की इच्छा है। हिंदी में नागपुर विश्वविधालय से सेकेण्ड क्लास एम. ए. हूँ। आपको इसलिए बता दिया कि कोई जगह, खास तौर पर लेक्चरर की, नजर आए तो आप ध्यान रख सकें।"*[74]

18/10/1957 के एक पत्र में मुक्तिबोध अपनी नौकरी के लिए सिफारिश करते हुए प्रमोद वर्मा को लिखते हैं *"आप मेरे बारे में कितनी हार्दिक चिंता रखते हैं, यह मुझे अपने अनुभव से मालूम है। आप राजनांदगाँव काँलेज में मुझे Fixup करवा दीजिए। यूनिवर्सिटी स्केल्स, जो एक हिंदी लेक्चरर को लागू हो, मुझे स्वीकार है। 200 रु प्रतिमाह तथा शायद D.A. 80रु० है—मुझे मंजूर है। वेतन निश्चित समय पर नियमानुसार प्राप्त होना जरुरी है, किन्तु उससे भी महत्वपूर्ण बात तीन महीने की वेकेशन की तनखाह मिलना है। मैं appoint किया गया तो दो साल निश्चित रहूँगा, इसका आश्वासन भी देता हूं। यदि उपयुक्त समझें तो लिखित भी दे सकता हूँ। मैं बाल-बच्चेदार आदमी हूँ। अब ज्यादा भटक–भटका नहीं सकता। सुस्थिर जीवन चाहता हूँ।"*[75] आगे इसी पत्र में वह अपने जीवन भर के संघर्ष को बड़ी ही सादगी से प्रकट करते हुए उन्हें लिखते हैं कि *"अगर राजनाँदगाँव कॉलेज मुझे खपा लेता है, तो फिर मैं वहीं settle भी हो जाऊंगा। लिखने*

[73] वही, पृष्ठ-संख्या-484

[74] वही, पृष्ठ-संख्या-486

[75] वही, पृष्ठ-संख्या-488

पढ़ने की इतनी असुविधा मेरी जिंदगी में रही है, और इतनी शीध्रतापूर्वक मैं स्थानान्तर और पदान्तर करता रहा हूँ, कि उससे (शारीरिक- मानसिक उन्नति तो छोड़िए) भौतिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं हो सकी है।''[76]

अग्नेश्का सोनी के नाम सम्बोधित 24/12/1964 के एक पत्र में मुक्तिबोध हार्दिक शुभेच्छा प्रकट करते हुए लिखते हैं, कि *''क्रिसमस के शुभ अवसर पर आप मेरी शुभाकांक्षाएँ ग्रहण कीजिए। औपचारिक रुप से लिखता तो क्रिसमस कार्ड भेजता। सम्भव है वह भी भेजूँ। किंतु इतना जानिए कि हम सब लोंगो की हार्दिक शुभाकांक्षांए आपके साथ है, और आप हमारे यहाँ वार्ता का विषय रहती हैं, यहां तक कि पिता जी ने भी बीच में आपके बारे में पूछा था।''*[77] एक अन्य पत्र में मुक्तिबोध जो शायद 1963 का ही 29 मई का है, जिसमें अपने तीसरे बच्चे की बीमारी का जिक्र करते हुए अग्नेश्का जी को वह पत्र में लिखते हैं, कि *''मेरे तीसरे लड़के दिवाकर को मुझे मेन हास्पिटल मे भरती करना पड़ा। वह कल ही वहाँ से लौट आया है। आप जानती होंगी, उसे एक तरह का दमा है। लगभग ढाई महीने के लम्बे attack के बाद, अब उसे कुछ राहत मिली, और अब मैं इस स्थिति में हूँ कि समुचित रुप से आपके पत्र का उत्तर दे सकूँ।''*[78] मुक्तिबोध आगे इसी पत्र में विवाह के लिए विजय कुमार जी का अग्नेश्का सोनी द्वारा चयन किए जाने से प्रसन्न होकर, उनके व्यक्तित्व पर आत्मीय टिप्पणी करते हैं, वह उन्हें लिखते हैं, कि *''आपके व्यक्तित्व को देखकर हमें यह पूर्वाभास भी हो जाना चाहिए था कि आप भारतीय बन जाएंगी। पारिवारिक भावना जो हमें आपमें देखने को मिली-परिवार में घुल-मिल जाने की जो प्रवृत्ति आपमें हमें दिखाई दी, वैसी प्रवृति बहुत-सी शिक्षिता भारतीय नारियों में भी नहीं दिखाई देती; शिक्षित पुरूषों से बात कर, वे विदा हो लेती हैं, अशिक्षित*

---

[76] वही, पृष्ठ-संख्या-488

[77] वही, पृष्ठ-संख्या-499

[78]वही, पृष्ठ-संख्या-500

घर की स्त्रियों से हेलमेल बढ़ाने में उन्हे संकोच और न जाने क्या-क्या होता है। लेकिन ऐसी कोई बात हमें आपमें ढूँढ़ने को भी नहीं मिली।''[79] अग्नेश्का सोनी का मुक्तिबोध से पारिवारिक सम्बन्ध रहा है, और आगे चलकर यह सम्बन्ध पिता और पुत्री के रुप में स्थापित हुआ। वह भी तब जब मुक्तिबोध भोपाल के हमीदिया अस्पताल में भर्ती थें। इस बात की पुष्टि अग्नेश्का सोनी के कथन से होती है, वह अपने साक्षात्कार में बताती हैं, कि *''भोपाल में जब मुक्तिबोध बीमार थे, मैं उनसे मिलने गई थी। मेरे पति भी साथ थे। वहाँ अस्पताल में ही, हिन्दु रीति से मेरे विवाह के आयोजन में उन्होंने पिता की भूमिका अदा की''।*[80]

अंततः हम कह सकते हैं, कि मुक्तिबोध के पत्रों में उनकी निजता का भरमार है, वह अपने आत्मीय जनों के समक्ष पूरी निश्छलता से अपनी पूरी संवेदनाओं के साथ, अपनी पूरी जीवटता और उसके सारे संघर्ष के साथ प्रकट होते हैं।

---

[79] वही, पृष्ठ-संख्या-500

[80] वर्मा, मोतीराम, लक्षित मुक्तिबोध, विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1972, पृष्ठ-संख्या-212

2.2-मुक्तिबोध के पत्रों में सहित्यिक-वैचारिकी

"मेरी समझ में किसी व्यक्ति की भारी-भरकम साहित्यिक कृति आँधी के समान हैं, उसके साहित्यिक पत्र उन झोकों के समान है, जो धीरे से आते-जाते रहते हैं और वायु की थोड़ी मात्रा साथ लाने पर भी साँस बनकर जीवन देते हैं।"[81]

साहित्य जगत में मुक्तिबोध मूलत: कवि के रूप में ख्यातिलब्ध हैं। उनकी मूल आत्मा एक कवि की आत्मा रही है। वह एक बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्तित्व रहे हैं, साहित्य की कई विधाओं में उनका हस्तक्षेप रहा है। उनकी सहित्यिक वैचारिकी बेहद सम्पन्न रही है, वह एक सोचने विचारने वाले, प्रखर बौद्धिक क्षमता से समृद्ध व्यक्ति के रूप में परिलक्षित होते हैं। वैचारिकी उनकी चेतना का अभिन्न हिस्सा रहा है, वह उनके लिये कोई कृत्रिम वस्तु नहीं रही है। सन् 1942 में नेमिचन्द जैन के सम्पर्क में आने के बाद उन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव पड़ा। दरअसल उन्हें पहले से ही किसी ऐसी विचारधारा की तलाश थी। जिससे जीवन जगत को उसके वास्तविक रूप में सुसंगत ढंग से व्याख्यायित किया जा सके। मार्क्सवाद के बारे में उनका मानना है कि *"मार्क्सवाद मनुष्य को कृत्रिम रूप से बौद्धिक नहीं बनाता, वरन् उसे ज्ञानालोकित आदर्श प्रदान करता है। मार्क्सवाद मनुष्य की अनुभूति को ज्ञानात्मक प्रकाश प्रदान करता है। वह उसकी अनुभूति को बाधित नहीं करता, वरन् बोधयुक्त करते हुये उसे अधिक परिष्कृत और उच्चतर स्थिति में ला*

[81] संपादक- हाड़ा, माधव, कथेतर, साहित्य अकादेमी प्रकाशन, नई-दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2017, पृष्ठ-संख्या-202

देता है।, संक्षेप में, मार्क्सवाद का मनुष्य की संवेदन क्षमता से कोई विरोध नहीं है, न हो सकता है।"[82] अत: वह ज्ञान को अनुभव की कसौटी पर कसने वाले व्यक्ति रहे हैं।

श्रीराम वर्मा ने अपने एक लेख में लिखा है, कि *"मुक्तिबोध के रचनात्मक व्यक्तित्व को समझने के लिए, उनकी रचना प्रक्रिया में प्रवेश के लिए, उनके सरोकारों और तनावों मे गहरे उतरने के लिए उनकी समीक्षाओं, उनकी साहित्यिक डायरी और उनकी पत्रकारिता से भी अधिक मूल्यवान उनके पत्र हैं।"*[83] अपने इस तथ्य की सहायक पुष्टि के लिए वह नेमिजी की टिप्पणी की उपेक्षा नहीं करते हैं, बल्कि उसे शामिल करते हैं, *"नेमिजी के अनुसार मुक्तिबोध के पत्रों में उनकी निजी समस्याओं के अतिरिक्त साहित्यिक, सैध्दान्तिक विषयों पर भी बहुत सी चर्चा है और यह सामग्री नि:सन्देह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों को अधिक आत्मीय और नये ढंग से उद्घाटित करेगी।"*[84] बहरहाल मुक्तिबोध के पत्रों में साहित्य और विचार और इन दोनों के मिले जुले कई प्रसंग हमें लक्षित होते हैं। जिनका सिलसिलेवार ढंग से हम अवलोकन करेंगे।

23/06/1945 को उज्जैन से लिखे पत्र में मुक्तिबोध ने नेमिजी से प्रगतिवाद की संकीर्णता और उसमें मानवीय अनुभवों और ज्ञान के प्रसार न होने से उसे आधुनिकता की जमीन पर लुढकते हुएं पाया। वह कहते है, कि *"I am slipping down the slope of progressivism [as a phenomenon of hindi literature] on the plains of modernism, and I find that though not as a theory but as an accomplished attempt, Hindi 'progressivism' is imbecile, narrow and much*

---

[82] संपादक- जैन, नेमिचंद्र, मुक्तिबोध समग्र (खंड-6),राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण: 2019, पृष्ठ-संख्या-128
[83] संपादक – सिंह, नामवर, आलोचना (त्रैमासिक पत्रिका), राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, वर्ष 32, अंक-66, जुलाई-सितंबर-1983, पृष्ठ-संख्या-7
[84] वही, पृष्ठ-संख्या-7

more hypothetical than real. at best, it is a new desire healthy in itself but unable to be too forceful, as it is not backed, supported and transmuted by a wide field of artistically humanizing experience and knowledge."[85] आगे इसी पत्र में वह नेमि बाबू से कहते हैं, कि आज कल मैं साहित्य के बारे में गंभीरता से सोच रहा हूँ। पिछले सात या आठ साल से मैं एक तरह से इस प्रवृत्ति की बाधा को महसूस कर रहा हूँ, लेकिन अब मुझे लगता है कि मुझे इसके साथ होना चाहिए। दरअसल मुक्तिबोध प्रगतिवाद को जीवन जगत के व्यापक फलक में देखने के पक्षधर रहे हैं, और उसी के साथ वो खड़े भी दिखाई देते हैं।

नेमि जी के अवसाद मुखर हो जाने पर 07/11/45 के एक पत्र में वह उन्हें बड़े प्यार से समझाते हुये कहते हैं कि *"आखिर frustration है तो रहे, वह इतनी बुरी चीज नहीं जितना उसका gloom न, इसको दूर करना ही पड़ेगा।"*[86] आगे इसी पत्र में कहते हैं कि अभी हमने किया ही क्या है, हम अभी पुस्तक के भाव है-अलिखित पुस्तक हैं। अभी से उस पर आलोचना कैसी? अभी से यदि हम निश्चयात्मक आलोचनाएं भोगने लगें, या लोग करने लगें तो हमारे सबसे बड़े Magnus opus की भ्रूणहत्या ही हो जाएगी। न बाबा, ऐसी गलती न करो। वह लिखते हैं, कि *"हमने अभी अपनी निजी जिन्दगी बनाना शुरु नहीं किया है। हम अभी तक वायवीय आदर्शवाद से ही प्रेरित हैं, यानी हमारे thoughts विचार नहीं, वरन् मात्र मानसिक प्रतिक्रियाएं हैं। और हम एक अर्थ में जरुर बह जाते हैं, बाहरी परिस्थिति के प्रवाह में; परिणाम हमारा अपना काम यों ही अधूरा रह जाता है। कम से कम मेरे अपने बारे में तो यह सोलह आना सही है, और इसके प्रतिक्रियास्वरुप उत्पन्न होती है, घोर ग्लानिपूर्ण अंतर्मुखता जिसे आप frustrastion कहते हैं। आखिर*

---

[85] संपादक- जैन, नेमिचंद्र, मुक्तिबोध समग्र (खंड-7),राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण: 2019, पृष्ठ-संख्या-324

[86] वही, पृष्ठ-संख्या-330

निराशा वही व्यक्ति अनुभव करता है, जिसका कोई निश्चित जीवन-कार्य [मिशन] है, और उसके आरम्भ करने में आन्तरिक और बाह्य अनेक बाधाएं हैं।"[87] शक्ति की एकाग्रता और वैज्ञानिक ईमानदारी हमसे सबकुछ करा सकती है, इस प्रकार मुक्तिबोध का प्यार और उनकी सहानुभूति मात्र भावुकता पूर्ण नहीं बल्कि विचार सम्मत गहनता लिए हुए है।

वीरेंद्र कुमार जैन उनके आत्मीय हैं, लेकिन इसके बावजूद उनमें वैचारिक भिन्नता है, यह उनके पत्रों से ज्ञात होता है। मुक्तिबोध उज्जैन से 6/10/1937 के एक पत्र में वीरेन्द्र के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें लिखते हैं, कि *"मैं सौंदर्य-लिप्सु बहुत दिनों से था। तुमने उसके साहित्यिक स्वरुप को जगाया। उसका एक दर्शन दिया – उसके कच्चेपन को पकाकर उसे सम्पूर्ण बनाया। जो मुझमें निहित था, वह प्रकट हो गया। उसकी पोयट्री और फिलॉसफी एक रुप हो गई। इसके जिम्मेदार तुम रहे।"*[88] अपने सौन्दर्य के आंतरिक परतों को खोलते हुए, ज्यादा स्पष्ट करते हुए, वीरेन्द्र के सौन्दर्य क्षेत्र की कार्यवृत्ति से स्वयं के सौन्दर्य क्षेत्र की कार्यवृत्ति को अलग करते हुए, मुक्तिबोध उन्हें लिखते हैं, कि *" प्रकृति मेरे लिए कभी भी बाह्य नहीं रही। वह मेरे हृदय की छाया थी। वह मेरी ही बनावट थी- मेरा ही विकार था। इसलिए प्रकृति में मेरा faith नहीं जगा। सायं मेरे लिए मरण सौन्दर्य था, रजनी उसकी निविड़ मंजु गम्भीरता थी - एक रुपता थी। प्रात: की अरुणाई मेरे लिए ज्ञानोदय थी। मुझे कभी प्रात: से अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ, जितना कि संध्या से था, क्योंकि उस महापावन प्रातर्पुलक से अनुभूत होना मेरे निविड़ गहन छायांधकार से कातर स्वभाव के लिए कृत्रिम था। प्रात: सौन्दर्य में लीन होने के लिए आत्मशक्तिपूर्ण, ज्ञानजन्य अन्त: स्वास्थ्य*

---

[87] वही, पृष्ठ-संख्या-330

[88] वही, पृष्ठ-संख्या-429

की अत्यन्त आवश्यकता है मेरे लिए।"[89] उन्होंने सौन्दर्य से ही सब कुछ सीखने से इनकार कर दिया और उसके साथ अनुभूति जन्य ज्ञान के समन्वय पर जोर दिया, वह लिखते हैं कि *"उसी ज्ञान के पीछे पागल मेरे मन ने सौन्दर्य से सब कुछ सीखने से इनकार कर दिया। सौन्दर्य सब कुछ नही सीखा सकता। उसके लिए मस्तिष्क की भी आवश्यकता है। और मस्तिष्क के लिए अनुभूति की आवश्यकता है। यदि इन दोनो की सम्बलता है तो जगत का रहस्य अधिक आलोकित हो सकता है।"*[90] मुक्तिबोध कहते हैं, कि यह मेरा अनुभव है, जिस पर मैं अविश्वास कर नहीं पाता हूँ, उनका मानना है, कि ज्ञान का स्रोत अबाह्य है। बाह्य दृष्टि से जाना जाता है, किन्तु अन्तःदृष्टि पहचानती है। इसी अन्तःदृष्टिगत ज्ञान को वह ज्ञान कहते हैं। ज्ञान रस को वह सर्वोत्तम मानते हैं। अपने मित्र से कहते हैं, कि तुम रस के द्वारा ज्ञान पर आए और मैं ज्ञान द्वारा रस पर ठहरा। इसीलिए तुममें अधिक तीव्रता और मुझमें अधिक व्यापकता आ गई। आगे मुक्तिबोध उन्हें लिखते हैं, *कि "मैंने जान बूझकर अपने को subjectivism से हटाया और objectivism art पर जोर दिया। मानवीय चरित्र की अपरम्पार भिन्नता उनकी परस्पर विरोधी अवसूथाएं और सांसारिक विशेषताएँ मेरे मन के अभ्यास की वस्तु बन बैठी। उनकी गहराई में स्थित एकता मेरे मन में implicit रही। unity understood रही और विविधता को प्रकाश मिला।'"*[91] मुक्तिबोध अपने आत्मीयजनों से भी आलोचना करते समय गैर ईमानदार नहीं हो पाते, इसी पत्र में इस तथ्य की पुष्टि होती है। वीरेन्द्र से वह कहते हैं, कि *" तुम्हारी आत्यंतिक संवेदनशीलता-जार्गन फिलॉसफ़ी तुम्हें छोडकर यदि दूसरे को अपील (करे) तो समझ लो कि वह तुमसे कु-प्रभावित है। मानवता के प्रति जो भयंकर उपेक्षा- भाव तुमने किया है, उपेक्षणीय है, ऐसा मेरा खयाल है। मानवता की आत्मा तुम्हारी वस्तु है, किन्तु उसका मानस-उसके सुख-दुख उसकी विभिन्न अवस्थाएँ आदि*

---

[89] वही, पृष्ठ-संख्या-429

[90] वही, पृष्ठ-संख्या-429

[91] वही, पृष्ठ-संख्या-430

तुम्हारा विषय कभी नहीं हो सकी, इसको मैं दोष नहीं कहता। किंतु हमारे लिए आत्मा के साथ ही मानस भी ज्ञान और पहचान की वस्तु है।''[92] इस तरह मुक्तिबोध अपनी राय प्रकट करते हुए दृष्टि की व्यापकता के स्तर पर उनसे अलग हो जाते हैं।

10/12/1942 के पत्र में मुक्तिबोध वीरेन्द्र से उजैन्न की दो जीवन्त संस्थाओं –'प्रगतिवादी लेखक संघ' और 'मध्य भारत पुरोगामी हिन्दी साहित्य समिति' का जिक्र करते हैं। जिसमें दूसरी संस्था के प्रतिक्रियावादी स्वरुप को स्पष्ट करते हुए दोनों संस्थाओं के प्रति चिंता व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार, *''ये दो वृहद संस्थाए समाज के शोषक वर्ग से निकलकर निर्माणशील युवकों के हाथ आएँ, वह उसकी इच्छा है। यदि न आ सके तो शीघ्र ही अखिल मध्य भारतीय लेखक सम्मेलन इस वर्ष बुलाया जाए, यह उसकी मनीषा है, जिसमें हम मुक्त और स्वच्छ रुप से कला, साहित्य, समाज, इतिहास आदि पर निर्माणशील प्रेरणा और सौहार्द के साथ विचार करें और पारस्परिकता निर्माण करें। इस प्रकार मुक्त सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण हो।''*[93] मुक्तिबोध प्रगतिशील तत्वों के प्रचार के पक्षपाती रहे हैं। इन्दौर में होने जा रहे 'आगामी मध्य भारतीय साहित्य सम्मेलन' में उज्जैन की प्रतिक्रियावादी संस्था के प्रस्ताव पास हो जाने से इन्दौर में प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्यों के प्रचार-प्रसार का सवाल सामने उठता है। जिसकी जिम्मेदारी वह वीरेन्द्र को देते हुए कहते हैं, कि *''यदि इन तीनो [वीरेन्द्र कुमार, डॉं माचवे और श्री वर्मा जी] को इन्दौर में कुछ भी व्होट मिलते हैं, तो, भी काम हो जाता है। हम जानते हैं, कि विरोधियों के धन-बल के सामने हमारे बुध्दि-बल की हार होगी । परिस्थितियों के कारण हार जाएंगे । परन्तु हमारी आवाज बुलन्द होगी । वह बुलन्दगी हमें आत्म-विश्वास देगी । हमारे निर्माणशीलों में इसी की कमी है।''*[94]

---

[92] वही, पृष्ठ-संख्या-430-431

[93] वही, पृष्ठ-संख्या-432

[94] वही, पृष्ठ-संख्या-432

अज्ञेय को लिखे 14/06/1938 के पत्र में मुक्तिबोध बौध्दिक और साहित्यिक कार्यगत स्वरसंगत की जमीन तलाश करते हुए उन्हें लिखते हैं, *कि "एक साहित्यिक क्षेत्र भी है, जहां बुध्दि और कर्मधारा की पृष्ठभूमि का सीधा वैचारिक असर पड़ता है। चाहता था कि अन्य मुझे अपने साथ लेवें। जो हैं, जो करना चाह रहे हैं, लिखना चाह रहें हैं, वे अकेले हैं। फैलने की प्रवृत्ति भी अजीब चीज है, तभी तो उनके धड़कते दिल के अर्थ प्रसारित हो सकते हैं।"*[95] दरअसल मुक्तिबोध दिल्ली में सुनाये जा चुके कहानी के सन्दर्भ में अज्ञेय की टिप्पणी चाहते थे। वह उनका ध्यान चाहते थे। साहित्यिक वैचारिकी के एक व्यापक भूगोल पर वह सांस लेना चाह रहे थे। इसी पत्र में आगे वह अज्ञेय को लिखते हैं, कि *"केवल संगठन से भी अधिक मूल्यवान होती है वैचारिक और सृजनात्मक समस्वरता और उसकी आत्मीयता। शायद मैं इसी के लिए अधिक तरस रहा हूँ और मेरी जिन्दगी के लिए इसी की सबसे अधिक जरुरत है।"*[96]

नामवर सिंह को लिखे एक पत्र जिसकी **तिथि अज्ञात** है, लेकिन विष्णुचन्द्र शर्मा को लिखे गए एक पत्र और इस पत्र के कन्टेंट के आधार पर यह 1957 के आस-पास की ही चिट्ठी ठहरती है। जिसमें बनारस की 'कवि' पत्रिका में मुक्तिबोध अपनी कविताओं पर नामवर सिंह की टिप्पणी के आधार पर उन्हें समानधर्मा के नाम से सम्बोधित करते हैं। आगे इसी पत्र में वो लिखते हैं कि *"सच कहूँ तो वैसी टिप्पणी जो आपने लिखी - किसी अन्य द्वारा संभव ही नहीं थी। गालियां पड़ती। मैं आपसे भी यही expect कर रहा था - लेकिन वे बौध्दिक गालियां होतीं - जैसे frustrated 'कुण्ठा ग्रस्त,' 'नैराश्य-ग्रस्त' आदि-आदि। या तो लोग ऐसी ही बात करते या प्रशंसा ही। प्रशंसा कम, गालियां ज्यादा। काश, प्रगतिशील आन्दोलन हम जैसे लोगों को थोड़ा समझ पाता। पिछले बारह वर्ष के एक पूरे तय में उसने काव्य-मर्मज्ञता के क्षेत्र मे जरा*

---

[95] वही, पृष्ठ-संख्या-438

[96] वही, पृष्ठ-संख्या-438

सी भी समझ, सहानुभूति और सहिष्णुता का परिचय दिया होता तो उसकी वैसी गत न होती, जैसी आज है।''[97] मुक्तिबोध ने प्रगतिशील आन्दोलन की इस संकीर्णता के प्रति हमेशा ही आलोचनात्मक दृष्टि अपनाई है। इसी संदर्भ में वह 'तार सप्तक' के प्रकाशन के बाद प्रगतिशील क्षेत्र में नई कविता को गालियां पड़ने का जिक्र भी करते हैं। उन्हीं के शब्दों में *''शुरु-शुरु में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के अनन्तर ही प्रगतिशील क्षेत्र में नई कविता को बड़ी गालियां पड़ी। आलोचना आवश्यक थी, विरोध आवश्यक नहीं था।''*[98]

6/08/1961 के एक पत्र में मुक्तिबोध नामवर सिंह से अपनी पुस्तक **'कामायनी: एक पुनर्विचार'** के भीतर बहुत सी त्रुटियों की चर्चा करते हुए नामवर सिंह द्वारा सुझाए गए माक्सर्वादी जार्गन की बात को ध्यान में रखकर, बल्कि उनकी बातों से पूरी तरह सहमति जता कर कामायनी के सन्दर्भ में वह उन्हें लिखते हैं, कि *''कामायनी की व्याख्या में, मैं इसे टाल नहीं सकता था। यदि मैं यह मानता हूं, कि देव-सभ्यता, सामन्ती सभ्यता का प्रतीक-चित्र है, कि जिस 'देव-सभ्यता' के नाश के पुत्र-रुप में मनु की स्थापना की गई है तो वैसी स्थिति में, सामन्ती सभ्यता के आगे कदम-पूंजीवादी सभ्यता, पूंजीवादी व्यक्तिवाद में सब शब्द अपरिहार्य हो जाते हैं। प्रसाद जी इसी पूंजीवादी सभ्यता के doom की भी अपने ढंग से तसवीर खड़ी करते हैं। यदि इस प्रकार की शब्दावली में बात न की गई तो सामन्ती सभ्यता के नाश से जन्मित सभ्यता के doom तक आने के इस पूरे क्रम की व्याख्या हो ही नहीं सकती।''*[99] मुक्तिबोध के लिए यह एक कठिनाई थी, फिर भी वह सोचते हैं, कि जहां तक हो सके मार्क्सवादी जार्गन में बात न हो। मुक्तिबोध अपने वैचारिक सहचर मित्र की बात पर गौर करते थे, उसे महत्वपूर्ण मानते थे।

---

[97] वही, पृष्ठ-संख्या-444

[98] वही, पृष्ठ-संख्या-445

[99] वही, पृष्ठ-संख्या-447

श्रीकांत वर्मा के नाम से संम्बोधित 01/02/1958 के पत्र में मुक्तिबोध उनकी कविताओं में उभर रही militancy को सराहते हुए लिखते हैं, कि *"कहने की आवश्यकता नहीं कि न केवल मुझे आपकी कविताएं पसन्द है, वरन् उसमें एक militant quality है। मैं नहीं समझता कि इस militant quality को छोड़ देना चाहिए - सौन्दर्य और सौष्ठव के नाम पर। आशा है, आप भी इस quality के महत्व को नहीं भुलाएंगे।"* [100]मुक्तिबोध श्रीकांत वर्मा के आत्मीय तो रहे ही हैं, वह एक सलाहकार के रुप में भी अपने पत्रों के माध्यम से लक्षित होते हैं। अपने एक अन्य 17/08/1959 के पत्र में मुक्तिबोध श्रीकांत जी द्वारा लिखित अपनी कविता पर एक लेख में यह देखकर कि उन्होंने उनके काव्य में प्रच्छन्न रुप से प्रवहमान राजनैतिक ध्वनि को पहचान लिया है, वह उन्हें लिखते हैं, कि *"आपका लेख मुझे पसंद आया। राजनीतिक स्वर जो मेरे काव्य में प्रच्छन्न रुप से विराजमान रहता है, आपने पहचाना। वह स्वर वस्तुत:, एक महत्वपूर्ण किन्तु गोपन विशेषता है, जो मेरे काव्य को रुप देती रही है। कभी-कभी सोचता रहा हूँ, कि मैं स्वयं अपनी कविताओं की व्याख्या करूँ। इस स्वर की ओर ध्यान खींचकर आपने महत्वपूर्ण कार्य किया है। भाषा के सम्बन्ध में भी जो आपने लिखा, वह युक्तियुक्त ही है; साथ ही मैं यह सोचता हूँ, कि पत्र द्वारा क्यों न सही, आप मेरी कविता की कमजोरियों को भी स्पष्ट करें, जिससे कि मुझे सहायता मिल सके।"*[101] इसी पत्र में मुक्तिबोध का मानना है कि *"जब आलोचना हितैषियो कि ओर से होती है, तब उसमें नये-नये रत्न प्राप्त होते हैं।"*[102]

[100] वही, पृष्ठ-संख्या-467

[101] वही, पृष्ठ-संख्या-470

[102] वही, पृष्ठ-संख्या-471

मुक्तिबोध ने जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि पर अपने लेखों में चिंता व्यक्त किया है, अपने 19/02/1962 को श्रीकांत को लिखे गए पत्र में मुक्तिबोध एक खास तरह की सौन्दर्याभिरुचि की तानाशाहियत के खतरे को भापते हुए उन्हें लिखते हैं, कि *"प्रत्येक प्रकार का काव्य-सौन्दर्य, romanticism नहीं होता। Romanticism भिन्न-भिन्न लेखकों के हाथों में पड़कर भिन्न-भिन्न हो जाता है। प्रत्येक प्रकार का Romanticism वांछनीय भी नहीं है। प्रश्न Romanticism का नहीं है। प्रश्न है एक विशेष सौन्दर्याभिरुचि की तानाशाहियत का अर्थात् उन सेन्सर्स का, जो उस सौन्दर्याभिरुचि ने एक खास प्रकार की काव्य रचना के लिए लागू किये हैं। प्रश्न उस सौन्दर्याभिरुचि के औचित्य-अनौचित्य का नहीं, उसके लागू किये गए कुछ censors का है।"*[103] मुक्तिबोध का भय और अनुभव रहा है, कि ये censors केवल रूप-शिल्प के क्षेत्र में ही लागू नहीं किए जा रहें हैं, परन्तु तत्त्व के क्षेत्र में भी सक्रिय हो रहे हैं। आगे इसी पत्र में उन्होंने लिखा है, कि *"नई कविता में न केवल गीतात्मकता है, वरन् नये कवियों ने 'गीत' के form को भी उठाया है। वात्स्यायन जी ने, गिरिजा कुमार माथुर आदि ने सुन्दर गीत भी लिखें हैं। गीत, as a literary form को उठा देना उचित नहीं। किसी literary form को destroy करने से वह destroy भी नहीं होगा। जो गीत आज प्रचलित है, उनका मूल्य अत्यल्प है। उसमें नये content की आवश्यकता है।"*[104]

'कृति' पत्रिका को मुक्तिबोध का सहज स्नेह प्राप्त रहा है, राजनांदगांव से लिखे 16/04/1961 के एक पत्र में श्रीकांत का 'कृति' के अन्त:स्वरुप के बारे में जो विचार है, उससे सहमति जताते हुए मुक्तिबोध उन्हें लिखते हैं, कि *"नई कविता में प्रगतिशील तत्व क्या है, तथा आगे उसकी दिशा कौन सी होनी चाहिए - इतना ही क्षेत्र 'कृति' का होना चाहिए। आप तो जानते ही हैं, कि तत्सम्बन्ध में क्या करना होगा। मेरा*

---

[103] वही, पृष्ठ-संख्या-474

[104] वही, पृष्ठ-संख्या-474

अपना ख्याल है कि उसे अधिकाधिक प्रगतिशील बनाया जाना चाहिए।''[105] मुक्तिबोध 'कृति' को श्रेष्ठ पत्रिका के रुप मे देखना चाहते थे, वह उसे अधिकाधिक प्रगतिशील बनाये जाने के पक्षधर थे।

अपने मित्र प्रमोद वर्मा जो 'वसुधा' में परिसाई जी के सहायक भी रहें, मुक्तिबोध उनसे 18/10/1957 के पत्र में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में अन्य पत्र जैसे 'युगचेतना', 'नया पथ' आदि में जो विचार-विमर्श प्रकाश में आते हैं। उनमें हिस्सेदारी के लिए आग्रह करते हैं, कि *''मेरा एक छोटा सा आग्रह यह भी है कि अन्यत्र जैसे युगचेतना, नया पथ आदि में कभी-कभी माक्सर्वादी दृष्टिकोण से जो विचार-विमर्श अथवा आलोचनाएं आदि होती हैं, उनका जवाब अथवा तत्सम्बन्धी उहापोह, कभी-कभी, मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही करने की मुझे सुविधा दी जाए। मैं यह सुविधा कभी-कभी ही चाहता हूँ। मार्क्सवादी दृष्टि भी एक दृष्टि है, किन्तु उसके अन्तर्गत भी काफ़ी विवाद उठ खडे होते हैं। मेरा ख्याल है कि इस प्रकार के लेखों से वसुधा स्वयं अधिक आकर्षक होगी।''*[106] मुक्तिबोध के लिए मार्क्सवादी दृष्टिकोण वैज्ञानिक दृष्टिकोण रहा है, उसके भीतर विवाद खड़े हो उठना उनके लिए चिंता का सबब बनता है। इसलिए उसमें हस्तक्षेप करना वह जरुरी समझते थे।

एक अधूरे पत्र में जो सम्भवत: 1958 के आस पास का ही है, जिसमें वह प्रमोद वर्मा से विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अशिष्ट व्यवहार पर प्रतिक्रिया करते हुए उन्हें लिखते हैं, कि *''उपाध्याय इतना महान साहित्यिक नहीं है कि वह दूसरों को अपने से निम्न समझते हुए उन्हें बालकवत् गिनने का क्षम्य रुप से दम्भ करे और उसके द्वारा दम्भ को हमारे द्वारा बिना चुनौति छोड़ दिया जा सके।''*[107] इसी पत्र में मुक्तिबोध कहते हैं, कि शायद उन पर रामविलास शर्मा का असर है, दरअसल मुक्तिबोध के शमशेर वाले लेख पर उपाध्याय

[105] वही, पृष्ठ-संख्या-478

[106] वही, पृष्ठ-संख्या-489

[107] वही, पृष्ठ-संख्या-491

द्वारा की गई भाषा के सम्बन्ध में टिप्पणी से आहत होकर वह प्रमोद वर्मा से हिन्दी भाषा की अस्थिरता को लेकर भाव-प्रसंग में अथवा भावना-प्रसंग का सूक्ष्म विवेचन करते हुए कहते हैं, कि *''परिस्थिति के भीतर जो जीवन-प्रसंग उपस्थित होते हैं, उन जीवन-प्रसंगों का एक पक्ष है- आत्म पक्ष, दूसरा पक्ष है-बाह्य पक्ष। आत्म पक्ष में बाह्य-पक्ष के प्रति प्रतिक्रियाएँ तथा संवेदनाएँ, रुख, रवैया, दृष्टि आदि-आदि तत्त्व रहते हैं।''*[108] इसके लिए वह उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं-- *''एक जीवन प्रसंग लीजिए। प्रेमिका के सामने प्रेमी की उपस्थिति किसी एक बाह्य परिस्थिति के भीतर-यह जीवन-प्रसंग है। इस जीवन-प्रसंग में [यदि कवि एक प्रेमी है तो] जो भाव प्रसंग है,वह साक्ष्य और मूर्त है। यह भाव प्रसंग है-प्रेमिका को देख, प्रेमी के मन में उमड़नेवाली विविध भावनाएं और संवेदनाएँ प्रेमिका के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियाएँ, जो प्रेमी के मन में उमड़ी, उत्थित हुई।''*[109] इसी पत्र में आगे एक स्थान पर विशिष्ट भाव-प्रसंग के सन्दर्भ में मुक्तिबोध एक और उदाहरण देते हैं, जिससे मुक्तिबोध की वैचारिक सूक्ष्मता और उसके गहरे ठोस तर्क का पता चलता है। वे कहते हैं कि, वास्तविक एकान्त स्थान में अपनी प्रेयसी को देखकर, प्रेमी के मन में [प्रेमी, प्रेयसी के पास खडा है] जो भावनाएँ उपस्थित होगी, वे भावनाएँ उस एकान्त स्थान के, प्रेयसी के चरित्र विशेष और मन: स्थिति विशेष के, तथा स्वयम् प्रेमी के चरित्र विशेष और मन:स्थिति - विशेष के, तथा अब तक के उनके प्रणय इतिहास के अनुसार होगी, अर्थात् उन सबसे वे conditioned होंगी। यह विशिष्ट भाव प्रसंग है। मुक्तिबोध ने विशिष्ट और सामान्य को लेकर बहुत ही स्पष्टता से उसका विवेचन इस पत्र में किया है। सामान्यकृत को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं, कि - *''वास्तविक मिलन - प्रसंग में भोगी गई विशिष्ट प्रसंगबध्द संवेदनाएँ और भावनाएँ, काव्य में उपस्थित न कर, उनके स्थान पर हमारे व अन्यों के वास्तविक जीवन में*

[108] वही, पृष्ठ-संख्या-491

[109] वही, पृष्ठ-संख्या-491

भोगे गए अथवा कल्पना द्वारा उत्तेजित किए गए, उपन्यास और फिल्मों में देखे गए अथवा अपने रिश्तेदारों के जीवन में पाए गए अथवा अपनी ही वासना द्वारा खड़े किए गए अनेक वास्तविक, काल्पनिक मिलन - प्रसंगो में जो सर्वथा सामान्य भावनाएँ, संवेदनाएँ या हाव भाव होंगे।"[110] उन्हें ही हम अपनी कविता में प्रस्तुत कर देते हैं। विशिष्ट और सामान्य को लेकर उन्होंने कहा कि *" राम या सड़क पर चलता हुआ एक आदमी जो हमें देख रहा है, वह एक विशिष्ट व्यक्ति है, किन्तु जब हम केवल आदमी कहेंगे तो यह आदमी कोई विशिष्ट व्यक्ति न होकर आदमी का एक सामान्यीकरण है।"*[111] इस पत्र में मुक्तिबोध की वैचारिकता अपनी पूरी प्रबलता के साथ मुखरित होती है। मुक्तिबोध परत दर परत को खोलने में माहिर रहें हैं, किसी स्थिति को स्पष्ट करने में उनके वैचारिकी की कोई सानी नहीं।

मुक्तिबोध के द्वारा आग्नेश्का सोनी को लिखे गए पत्रों में गहन वैचारिकता का समावेश है। प्रतिक्रियावादी शिविरों से आया जानकर, चूंकि आग्नेश्का सोनी इलाहाबाद के साहित्यिक मंडल से आई हुई थी, इसलिये मुक्तिबोध को भय था, कि कहीं वह प्रतिक्रियावादी शिविरों में न जा मिलें। 29 मई संभवत: 1963 के पत्र में मुक्तिबोध अपने भीतर के भय के कारणों को आग्नेश्का से साझा करते हुए लिखते हैं, कि *"साम्यवादी देशों से, (पोलैंड साम्यवादी देश ही है) किन्हीं मतभेदों के आधार पर, निकले हुये या भागे हुये लोग, अथवा ऐसे ही अन्यान्य कारणों से आये हुये लोग बहुधा साम्यवाद विरोधी शिविर में जा मिलते हैं। भारत में साम्यवाद विरोधी प्रतिक्रियावादियों की संख्या कम नहीं है। साहित्यिक क्षेत्र में भी सक्रिय है। इलाहाबाद ऐसे कुछ लोगों का केंद्र है।"*[112] वह आगे इसी पत्र में कहते हैं, कि शीत-युद्ध ने जिंदगियों को जिस तरह से उलझा दिया है, वह बहुत भयानक है, ऐसी स्थिति में अपने देश से उन्मूलित आप कहीं

---

[110] वही, पृष्ठ-संख्या-492

[111] वही, पृष्ठ-संख्या-492-493

[112] वही, पृष्ठ-संख्या-501

प्रतिक्रियावादियों के शिविर में न पहुँच जाएं, यह भय मुझे था। अपने भय की इस स्वाभाविकता में और गहरे में प्रविष्ट होकर वह लिखते हैं, कि *"उन्मूलित व्यक्ति अपने पितृदेश का सहारा नहीं पाता। और, वैसा आश्रय और बल न प्राप्त होने पर वह अपने जीवन-धारण और जीवन-रक्षा के हितों के लिए ऐसे प्रतिक्रियावादियों के हाथ में खेल सकता है, उनके प्रभाव में आ सकता है—यह भय—मेरा भय अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।"*[113] आगे इसी पत्र में मुक्तिबोध उन्मूलित व्यक्तित्व के जीवन के दो विपरीत पहलुओं पर भी दृष्टिपात करते हैं। वह आग्नेश्का को लिखते हैं, कि *"मनुष्य अपने देश में भी रहकर ऐकांतिक और उन्मूलित जीवन व्यतीत कर सकता है। यह भी एक वस्तु-सत्य है, इसके विपरीत यह भी एक वस्तु-सत्य है, कि अनेक देशों के क्रांतिकारी मनीषियों ने, निर्वासन की अवस्था में, अन्य देशों में त्राण पाया, और वहाँ बैठकर स्वदेश की सेवा की। ऐसी स्थिति में, आप पोलैंड तथा भारत के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान अवश्य ही कर सकती हैं।"*[114] इसी पत्र में मुक्तिबोध आग्नेश्का के जाति-व्यवस्था के प्रश्न का उत्तर देते हुए उसे सूक्ष्मता से विश्लेषित भी किया है।

अंततः यह कहा जा सकता है, कि मुक्तिबोध के पत्र उनकी साहित्यिक वैचारिकी का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है, जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ पत्राचार के बहाने प्रकट हुआ है।

---

[113] वही, पृष्ठ-संख्या-502

[114] वही, पृष्ठ-संख्या-502

तृतीय अध्याय :

3 – मुक्तिबोध के नाम पत्रों में मानवीय संबंध

3.1 - मित्रता का अंतरंग भूगोल

3.2 - जीवन संघर्षों की अभिव्यक्तियाँ

3.3 - साहित्यिक गतिविधियाँ

3.4 - साहित्यिक वैचारिक संवाद

3.1- मित्रता का अंतरंग भूगोल

वह मित्र का मुख

ज्यों अतल आत्मा हमारी बन गयी साक्षात् निज सुख।

वह मधुरतम हास

जैसे आत्म-परिचय सामने ही आ रहा है मूर्त हो कर।

जो सदा ही मम हृदय-अन्तर्गत छिपे थे

वे सभी आलोक खुलते जिस सुमुख पर !

वह हमारा मित्र है,

आत्मीयता के केन्द्र पर एकत्र सौरभ ! वह बना

मेरे हृदय का चित्र है ! [115]

"पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिस एक कवि ने मरणोत्तर मूर्धन्यता अर्जित की, वे है गजानन माधव मुक्तिबोध। वे एक ऐसे कवि भी रहें हैं, जिनकी कविता में मित्रता का एक विराट स्पन्दित परिसर महसूस किया जा सकता है, दरअसल उन्हें एक अनोखे अर्थ में एक बड़ा मित्र कवि भी कहा जा सकता है। एक स्तर पर उनकी कविता मित्र संवाद है। वह जो सुने उसको तो सम्बोधित है ही, वह अपने मित्रों को भी लगातार और विशेष रुप से सम्बोधित है।"[116] *- अशोक वाजपेयी*

मुक्तिबोध एक मित्रजीवी व्यक्ति रहें हैं। मित्र उनके लिए मीठी याद है, उनके लिए प्रेरणा देने वाले हैं। उन्होंने कई कविताएं मित्रों को सम्बोधित कर लिखी हैं। नि:संदेह मुक्तिबोध की अंतरंगता का भूगोल मित्रता की संस्कृति से निर्मित है। इस निर्मिति में कईयों की हिस्सेदारी है, उस हिस्सेदारी में प्रवेश करने के लिए उन मित्रों द्वारा लिखे गए पत्र ही सबसे ज्यादा प्रमाणित हो सकते हैं। जिसके माध्यम से मित्रता की इस साझी जमीन को बखूबी समझा जा सकता है। आत्मीयता के वैविध्यपूर्ण रंग, उनकी निजी संवेदनाओं को मुक्तिबोध के प्रति समझा जा सकता है। जीवन के विविध पहलुओं पर दुखात्मक एवम् सुखात्मक स्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाएं, उनकी संवेदनाएं मित्रता के उस अंतरग भूगोल को प्रकट करती है, कि जो भूगोल उन लेखक मित्रों और मुक्तिबोध के पारस्परिक सम्बन्ध से निर्मित हुआ। उन पारस्परिक सम्बन्धों के संवादी प्रमाण के

---

[115] तार सप्तक, सम्पादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई- दिल्ली, बारहवां - संस्करण -2019, पृष्ठ - संख्या - 24

[116] मेरे युवजन मेरे परिजन (ग.मा.मुक्तिबोध के नाम पत्र)- सम्पादक- रमेश गजानन मुक्तिबोध, अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नई- दिल्ली, पह्ला संस्करण:2007, पृष्ठ-संख्या-12

तौर पर उन पत्रों को रेखांकित करना ही यहां हमारा उद्देश्य है। जिसके बहाने मुक्तिबोध के प्रति उनके मित्रों की मित्रता के अंतरंग भूगोल से साक्षात्कार किया जा सकेगा।

जिन्हें अब हम एक-एक करके आपके सामने प्रस्तुत कर रहें हैं। जिसकी शुरुआत प्रभागचन्द्र शर्मा से की जा सकती है, जो मुक्तिबोध के कॉलेज के दिनो से ही मित्र रहें हैं। मुक्तिबोध के नौकरी के लिए मिडिल स्कूल, बड़नगर चले जाने पर 01/07/1938 के पत्र में वह अपने हृदय के भाव उनसे साझा करते हुये कहते हैं कि *''तुम बहुत दूर पहुंच गए भाई इन्दौर थे, तो मिल भी लेते थे अब वह भी दुश्वार हो गया। मैं यह नही समझता तुम यह कहां तक समझ पाए हो कि मेरे मन के अत्यन्त स्नेहपूर्ण सुकोमल तन्तु तुमसे उलझकर रह गए हैं। तुम्हारे प्यार का जो अप्रत्यक्ष जल उन्हें मिलता रहा है उसे, सिंचनहार अपनी सृष्टि से विस्तार के साथ अधिक बारिकी से जिस तरह नही ध्यान रख सकता ठीक उसी तरह तुम्हें भी ठीक पता चाहे न हो पर मैं उसे खूब गहरे से अनुभव कर रहा हूं।''*[117] दरअसल मुक्तिबोध के प्रेम के इस अप्रत्यक्ष जल के प्रति प्रभाग अपनी गहरी अनुभूति को ही व्यक्त करते हैं। वह उन्हें कॉलेज के दिनों से आज तक कई रुपों में देखते आएं हैं। अब उन्हें विकास के चौराहे पर देखकर, उनके जिज्ञासा का देव उन्हें जिस मार्ग से ले जा रहा है वह उन्हें कल्याणकर होगा। ऐसी आकांक्षा प्रकट करते हैं, एक अन्य पत्र में जो 13/08/1940 का पत्र है, जिसमें प्रभाग अपने मानसिक सन्ताप उत्ताप के क्षणों में मुक्तिबोध को याद करते हुए उन्हें लिखते हैं, कि *''जीवन में कुछ गम्भीर कर्मधारा का प्रवेश होना पड़ेगा । फील हम कर रहे हैं; कौन जाने कर्म पर वह सब कब उतरेगा? तुम कितने समीप हो जाते हो मुक्तिबोध ऐसे सुन्दर क्षणों में; मैं पथहीन लक्ष्य से सर्वथा अनभिज्ञ; यात्री (?) हूँ , ऐसा सभी मित्र कहते हैं। यह क्या रंग है; समझा सकोगे ? मुझमें तो जाने क्यों दिन ब दिन जीवन के प्रति अनास्था हो रही है। बढ़ रहा है मेरा मुझी में अविश्वास !''*[118] एक अन्य पत्र जो 24/09/1940

---

[117] वही, पृष्ठ - संख्या - 21

[118] वही, पृष्ठ- संख्या -26

हैं, जिसमें प्रभाग कलकत्ता इम्पीरियल लाइब्रेरी में पढ़ने जाने की खुशी साझा करते हुए मुक्तिबोध से कुछ आर्थिक मदद करने का तकाजा करते है, उन्हें लिखते हैं, कि *''तुम्हारी तकलीफों को मैं जानता हूँ। पर तब भी तुम्हें इस समय कुछ मदद करनी पड़ेगी। जितनी कर सको। मैंने चुनिन्दा चार-पाँच मित्र चुने हैं। उनमें माचवे नहीं है, वीरेन्द्र भी नहीं है। तुम्हारा और मेरा दुर्भाग्य की तुम उनमें हो!''*[119] अत: तुरन्त पत्र लिखो कि कितना तुम प्रबन्ध कर सकोगे।

प्रभाकर बलवन्त माचवे से मुक्तिबोध का परिचय वीरेन्द्र के माध्यम से ही हुआ था। धीरे-धीरे यह परिचय मित्रता में बदल गया। अपने एक 26/11/1937 के पत्र में माचवे मुक्तिबोध से शिकायती लहजे में कहते हैं, कि *''यहां तो काफ़ी मित्रता हम लोगों की हो गई थी। पर ओ कलाकार- in-embryo क्या वह मित्रता यहां तक ही की थी क्या? क्या चिट्ठी-विट्ठी न भेजने की कसम खा बैठे हो? क्या बात क्या है?''*[120] इसी पत्र में मुक्तिबोध के हवाले से विलायतीराम घेई और वीरेन्द्र के भी पत्राचार न करने से माचवे कहते हैं, मैने कहा न आदमी का भी जब तक पास तब तक आस रहती है। फिर कौन किसके होते हैं। अपने 11/01/1950 के पत्र में माचवे, अज्ञेय जी से मुक्तिबोध के अस्वास्थ्य के बारे में सुनकर चिंतित होते हैं और उन्हें अपने यहां चले आने का आग्रह करते हुए उन्हें लिखते हैं, कि *''वैसे तुम यहां कुछ दिन के लिए क्यों नही चले आते । मेरे यहां जो कुछ रुखी-सूखी होगी, दो जून तो खाने को दे ही दूंगा। छुट्टी लेकर आ जाओ। कुछ दिन रहो । मुमकिन है कोई काम भी तुम्हारे लिए निकालें।''*[121] माचवे की चिन्ता केवल उनके स्वास्थ्य के ही प्रति नहीं बल्कि उनके आजीविका के प्रश्न को लेकर भी थी । मुक्तिबोध के दाएं अंग पर पक्षाघात की

---

[119] वही, पृष्ठ- संख्या -27

[120] वही, पृष्ठ- संख्या - 31

[121] वही, पृष्ठ- संख्या -38

खबर श्रीकांत से सुनकर उन्हें आघात पहुँचा था। अपने 18/02/1964 के एक पत्र में वह लिखते हैं, कि वह बहुत अपराधी हैं कि हमेशा मुक्तिबोध की चर्चा करते रहते हैं –पर अरसे से उन्हें पत्र नहीं भेज पाएं। आशा करते हैं कि मुक्तिबोध जल्दी स्वस्थ हो जाएंगे। ऐसी स्थिति में वह शान्ताबाई और उनके बच्चों को धीरज किन शब्दों मे दें ? यही विवशता वह जाहिर करते हैं।

अपने लेखन के शुरुआती दिनो में मुक्तिबोध बौध्दिक सखा के रुप में अज्ञेय से सख्य की मांग करते हैं, जिसमें अज्ञेय अपनी विवशता प्रकट करते हुए अपने 7/07/1942 के पत्र में उन्हें लिखते हैं, कि *"मैं बौध्दिक दृष्टि से बहुत अच्छा सखा नहीं हूँ —क्योंकि अन्तत: मैं स्वयम् एक घोर अकेला आदमी हूँ। आपने जाने अनुभव किया है या नहीं, पर मैं विश्वास करता हूँ कि यह अकेलापन बाह्य परिस्थितियों का परिणाम नहीं है—आदमी के भीतर ही एक अनिवार्यता होती है। जिसके कारण वह अकेला ही रहने को बाध्य होता है। वह विवशता मुझमें भी है। अत: मैं स्वयं एक उच्चतर तल पर सख्य की मांग करता हुआ भी उसे पाने में असमर्थ हूँ –क्योंकि मैं उसे देने में असमर्थ हूँ।"*[122] आगे इसी पत्र में अपने व्यक्तित्व के रचनात्मक पहलुओं पर पड़ रहे प्रभाव के बारे में कहते हैं, कि वह जानते हैं कि यह मौलिक अभिशाप ही उनकी रचनाओं को भी ऐसा रखता है कि वे आदर पावें पर जनप्रिय न हो।

नारायण विष्णु जोशी से मुक्तिबोध का परिचय भी प्रभाकर माचवे के माध्यम से ही हुआ, नौकरी के सिलसिले में; बाद में यह सम्बन्ध पारिवारीक हो गया। इतना पारिवारिक कि डॉ. जोशी अपने बहन की बेटी के रिश्ते की बात-चीत की जिम्मेदारी मुक्तिबोध को सहेजते हैं, अपने 10/01/1940 के पत्र में वह उन्हें लिखते हैं, कि *" I have dropped today a letter to my sister at Agar and she is expected to come down to ujjain on the 13th evening. I too come down to ujjain on the same*

---

[122] वही, पृष्ठ- संख्या - 42

day by the night train to see that everything with regard to the matter is properly settled. in case I do not come down please take my sister with you and show her the girl. in the mean time I wish that you should talk to Mr. Telang about the terms of marriage.''[123] डॉ. जोशी मुक्तिबोध का ध्यान शादी की शर्तों पर ले जाते हैं और तेलंग जी से सारी स्थितियों को स्पष्ट कर लेने का दायित्व सौंपते हैं। एक अन्य पत्र जो 10/09/1941 का है, जिसमें डॉ. जोशी अपनी अगाध खुशी मुक्तिबोध के पुन: 'शारदा शिक्षा सदन' लौटने की इच्छा पर प्रकट करते हैं, और उन्हें इस पत्र में लिखते हैं कि *''Very glad to receive your letter. you are always welcome here. in fact, we shall be very happy here in your company.''*[124] इसी के अगले दिन के पत्र में नेमि जी के शुजालपुर पहुँचने की सूचना देते हुए जोशी जी हर्षित होते हैं और मुक्तिबोध के शुजालपुर जल्द आने के इरादे को लेकर पत्र लिखने का आग्रह करते हैं।

वीरेन्द्र कुमार जैन माधव कॉलेज से ही मुक्तिबोध के परिचित रहें हैं। लेकिन दोनों की मित्रता प्रगाढ़ इन्दौर में बी. ए. के दौरान ही हुई। अपनी वैचारिक भिन्नता के बावजूद, एक दूसरे से अनबन के बावजूद दोनों की अंतरंगता देखने योग्य है। अपने 11/02/1942 के पत्र में वीरेन्द्र लिखते हैं कि *''कल तुम्हारा पत्र फिर मिला। जिस कदर खुशी हुई मैं लिखकर तुम्हें बता नहीं सकता। इसलिए कि नाराज होकर भी क्या तुम कभी मेरे अनात्मीय हो सकते हो; बीच में तीन चार पत्र तुम्हारे आए, अपनी उस विवशता को क्या कहूँ – जिससे मैं उत्तर न दे सका। बहरहाल सुना, तुम्हारा गिला-शिकवा मुझ तक पहुंचा कई रुपों में कि तुम अपने इस हमराज अजीज दोस्त की बावफ़ा खामोशी के अब तो आदि हो गए हो- उसका क्या मतलब हो सकता*

---

[123] वही, पृष्ठ- संख्या -57-58

[124] वही, पृष्ठ- संख्या -61

है- यह जानने को बेचैन थे। लेकिन तुम यह जान लो कि तुम्हारी नाराजी और शिकायत सुनकर भी मैं खुश था।''[125] आगे इसी पत्र में वो लिखते हैं, कि उनका दिल भरा आता था इसलिए कि मुक्तिबोध उनके हैं और इसी हक से तो वह नाराज होते हैं, नहीं तो हर मामूली आदमी को उनसे नाराज होने की कहां फ़ुर्सत है।

मुक्तिबोध के पक्षाघात की खबर सुनकर **'आलोचना'** पत्रिका के संपादक रहे शिवदानसिंह चौहान अपने 27/02/1964 के पत्र में उनके प्रति गहरी आर्द्रता प्रकट करते हैं। ऐसे समय में देरी से जवाब के लिए भी वह दुख जाहिर करते हुए उन्हें लिखते हैं, कि *''हार्दिक दुख है कि पहले उत्तर नहीं दे सका, खासकर जबकि सोचता हूँ कि इस देरी से आपको नुकसान हो सकता है। आपके दाएं अंग को पक्षाघात हो गया है, यह जानकर जितना दुख और चिंता हो रही है, इसको व्यक्त करना सम्भव नहीं है। इस विपत्ति से आपको तो लड़ना ही है, हम सब लोगों को जो आपके मित्र और प्रशंसक हैं अपनी सामर्थ्य भर आपको बल और साधन प्रदान करने का दायित्व उठाना है।''*[126] शिवदानसिंह चौहान मुक्तिबोध से इलाज के लिए दिल्ली आने का निवेदन करते हैं। वह कहते हैं कि दिल्ली आने पर भी अगर यह मालूम हुआ कि भारत में आपका इलाज संभव नहीं तो हम लोग (साहित्यिक लोग) आपको सोवियत यूनियन भेजने का प्रबन्ध करेंगे।

मुक्तिबोध के दिन आजीविका की समस्या के कारण परेशानी में गुजर रहे हैं, यह जानकर 'हंस' के संपादक अमृतराय को बड़ी तकलीफ होती है। अपने 27/10/1947 के पत्र में वह उन्हें लिखते हैं, कि - *''कल तुम्हारे खत से मुझे बड़ी तकलीफ हुई। नेमि के पास जो खत गया था, उसमें भी ऐसी कुछ बातें थी। बड़ी परेशानी में तुम्हारे दिन गुजर रहे हैं। मेरे लायक जो खिदमत हो, नि:संकोच आज्ञा दो।''*[127] आगे इसी

---

[125] वही, पृष्ठ- संख्या -83

[126] वही, पृष्ठ- संख्या - 124

[127] वही, पृष्ठ- संख्या - 136

पत्र में वह हंस के एक सहायक के रुप में मुक्तिबोध से आग्रह करते हैं कि *''नागर (नरोत्तम दास नागर) को भी काम की सख्त जरुरत है। मगर तुमको भी तो है। और तुम मेरे अधिक पास हो , इसलिए मैं चाहूँगा, कि तुम आ जाओ। इसका यूँ कतई मतलब नहीं है, कि अमृत राय मुक्तिबोध पर कोई अहसान कर रहा है। कोई किसी पर अहसान नहीं करता।''*[128] लेकिन काम के समय स्ट्रिक्ट होने के शर्त पर भी जोर देते हैं, ताकि मित्रता और पेशे की जिम्मेदारियों पर कोई आँच न आए।

जगत शंखधर 'प्रदीप' पत्रिका के सहायक सम्पादक और मुक्तिबोध के मित्र रहें हैं, जिन्हें वह अपना उपन्यास स्नेह भावना के कारण प्रकाशित करने के लिए मुफ़्त में ही देने के लिए कहते हैं। जिस पर द्रवित होकर 18/01/1946 के पत्र में शंखधर अपनी भावना प्रकट करते हुए मुक्तिबोध को लिखते हैं कि *''मेरे लिए आप उपन्यास मुफ़्त देंगे। पहले-पहल पढ़ने पर यह बात मुझे निहायत unbolshevic लगी और मैं इस विषय में कुछ और ही कहने वाला था। पर सोचा कि बोल्शेविक भी पहले मानव है और स्नेह भावना उनमें पहली चीज है। दो दिन के पहचान में ऐसा क्या मिला जो यह करने की सोच रहे हो। उपन्यास जब देना तब देना- मैं उस भावना को साभार, ससम्मान, नतशिर स्वीकार करता हूँ।''*[129]

भारतभूषण अग्रवाल का भी परिचय माचवे के माध्यम से ही मुक्तिबोध से हुआ था। यह तो सर्वविदित है कि मुक्तिबोध का स्वभाव संकोची प्रवृति का रहा है और आर्थिक अभाव तो उनके जीवन से अभिन्न रुप से जुड़ा रहा। लेकिन इस प्रवृति के कारण मुक्तिबोध का अग्रवाल जी से फेवर मांगने में संकोच करना उन्हें नाराज करता है। उनकी नाराजगी के पीछे-छिपे आत्मीयता को उनके 27/04/1946 के पत्र के

[128] वही, पृष्ठ- संख्या - 136

[129] वही, पृष्ठ- संख्या - 145

जरिये देखा जा सकता है। वह लिखते हैं कि *"your letter dated the 20th has just reached me. Maybe you had to fight hard within yourself on "to post or not to post''. Any way you need not to hesitant or shy in demanding a very easy favour from a friend like me. As a matter of fact it is better to ask such favour only from those who understand you and your difficulties."*[130] इस तरह भारतभूषण कहते हैं, कि यह तुम्हारा अधिकार है, कि तुम मुझसे मदद के लिए नि:संकोच कह सकते हो। अपने एक अन्य पत्र में अग्रवाल जी मुक्तिबोध से छुट्टियां अपने साथ बिताने का आग्रह करते हैं। वह 30/03/1947 के पत्र में उन्हें लिखते हैं, कि *"Do you think you could come here and stay with me during your vacation? I will love to get your company and Binduji will be so pleased to have shantaji."*[131]

मुक्तिबोध के अजीज मित्र नेमिचन्द्र जैन रहे हैं। यह एक महत्वपूर्ण नाम मुक्तिबोध के जीवन का है जिनसे उनकी अंतरंगता अत्यधिक प्रगाढ़ रही है। जिसकी बानगी उनके द्वारा लिखे पत्रों में मौजूद है, एक पत्र में तो वह यहाँ तक कहते है, कि रुह मड़राती है, वहाँ जहाँ आप बैठते हैं। ऐसे गहन आत्मीय मित्र को अगर नेमिचन्द्र जैन भले ही परिस्थितिजन्य विवशताओं के कारण पत्र न लिख पाने के अपराध बोध से ग्रसित हो जाते हो तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं, अपने बम्बई से लिखे 24/02/1947 के पत्र में वह उन्हें लिखते हैं, कि *"I am almost nervous to write these lines to you. My criminal and unjustified sleeping over your so intimate and loving letters makes me feel so*

130 वही, पृष्ठ- संख्या -160

131 वही, पृष्ठ- संख्या - 161

embarrassed now when I finally muster up enough determination to write to you. I will not ask you to forgive me. You must not. That will be proper reminder to me for future.[132] एक अन्य पत्र में वह बहुत दुखी होते हैं, यह जानकर कि मुक्तिबोध अपनी नौकरी खो चुके हैं, और इलाहाबाद में उनके लिए नौकरी तलाश करने के लिए भी उन्हें आश्वस्त करते हैं। अपने 22/09/1947 के पत्र में वह लिखते हैं कि *"I was so sorry to get your letter. It is really very unfortunate that you should have lost your job at this moment. I have already wired you Rs. 50/- which you must have got. I am trying to get a job for you. Please write to me by return of post if you can accept a job of between Rs.75/- to 85/- in Allahabad. "*[133] इसके अलावा वह उन्हें सलाह भी देते हैं, कि यहाँ लेखन से भी अतिरिक्त पैसे कमाए जा सकते हैं। कुल मिलाकर वह उनकी स्थिति के सुदृढ़ीकरण में हर तरह से सहयोग देने से गुरेज नहीं करते हैं।

हरिनारायण व्यास दूसरे सप्तक के कवि हैं, जिन्हें मुक्तिबोध का सानिध्य मिला, कवि की जीवन चेतना मिली, जिसे व्यास खुद सप्तक के वक्तव्य में स्वीकार करते हैं। मुक्तिबोध का पत्र पढ़कर वह सुख का अनुभव करते हैं, साथ ही उनके अस्वस्थ होने से अधिक चिन्ता भी व्यक्त करते हैं। अपने 17/11/1947 के पत्र में वह लिखते हैं कि *"आज आपका पत्र मिला। पढ़कर जो सुख हुआ उसका वर्णन शब्दों की शक्ति के बाहर है। यह जानकर कि आप अस्वस्थ हैं बड़ी चिन्ता हुई।"*[134]

---

[132] वही, पृष्ठ- संख्या - 170

[133] वही, पृष्ठ- संख्या - 172

[134] वही, पृष्ठ- संख्या -177

मुक्तिबोध के द्वारा लिखे गए पत्र की प्रतिक्रिया एक लम्बे अंतराल के बाद देते हुए शिवमंगल सिंह 'सुमन' लज्जा और ग्लानि से नतमुख दिखाई पड़ते हैं। अपने 30/04/1949 के पत्र में वह उन्हें लिखते हैं, कि *''बडी ही लज्जा और ग्लानि से नतमुख आज तुम्हें उत्तर देने का साहस संजो सका हूं। मेरी इस अक्षम्य अकर्मण्यता के प्रति तुम जितने भी अवज्ञाशील हो सको, कम है। सच मानो जीवन में पहले पहल तुम्हारा पत्र पाकर मुझे अनायास ही जो हार्दिक सुख मिला था, उसे व्यक्त कर सकने योग्य मुख ही मेरा नहीं रहा।''*[135] जीवन के बिखराव और संयोग के अभाव में पत्र न लिख पाने की उनकी विवशता और उससे उपजी हुई ग्लानि ही मित्रता की भावभूमि को प्रकट करती है।

नरेश मेहता जिन्हें मुक्तिबोध का साहचर्य मिला। उन्हीं के शब्दों में *''मैंने उन्हें सन् 1953 के दिनों में पूरे वर्ष भर देखा। यदि भूल नहीं करता तो वह मुहल्ला शुक्रवारी नाम से जाना जाता था।''*[136] हालांकि नरेश एक दूसरे को उज्जैन से ही जानते थे। बल्कि एक दूसरे को नापसन्द भी करते थे, लेकिन रेडियो की नौकरी के दौरान उनमें घनिष्ठता आती गई, बल्कि वह अत्यधिक पारिवारिक होते गए। मुक्तिबोध की पुत्री सरोज की मृत्यु की बात सुनकर वह व्यथित हो उठते हैं, अपने 7/04/1956 के पत्र में वह उन्हें लिखते हैं, कि *''प्रिय सरोज नहीं रही। यह एक ऐसी दुर्घटना है, कि जिस पर कुछ भी कह सकना कठिन है। कई बार मुझे ध्यान आता है, कि अच्छे एवं प्रिय क्यों ऐसे शीघ्र चले जाते हैं? और हमारे जैसे व्यर्थ की स्थिति बनाए सींग मारते, नथुने फुलाए बैठे रहते हैं। भाभी को मेरी ओर से सांत्वना दीजिए।''*[137]

---

[135] वही, पृष्ठ- संख्या - 180

[136] महागुरू मुक्तिबोध: जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर, कान्तिकुमार जैन, सामयिक प्रकाशन, नई-दिल्ली, संस्करण: 2018, पृष्ठ-संख्या - 108

[137] मेरे युवजन मेरे परिजन (ग.मा.मुक्तिबोध के नाम पत्र) - सं. - रमेश गजानन मुक्तिबोध , अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली , पहला सं : 2007, पृष्ठ संख्या - 201

नरेश अपने पत्रों में अक्सर ही अपने यहाँ आने का आग्रह मुक्तिबोध से करते रहें हैं। यहाँ तक कि उनकी पत्नी महिमा भी एक पत्र में उनसे आग्रह करती हैं, अपने 8/06/1960 के लिखे पत्र में वह कहती हैं कि *"मेरा आप लोगों से सिर्फ इतना ही आग्रह है कि आजकल गर्मी की छुट्टियाँ हैं, तो आप लोग बच्चों सहित कुछ दिनों के लिए यहाँ आ जाइए। इनका भी अनुरोध है।"*[138] इसी पत्र में आगे नरेश लिखते हैं, यदि आप आ जाएं तो क्या बात है- मौसम बदल जाएगा, मन तरल जाएगा और के आगे उन्हें कुछ सूझता भी नहीं तो पत्र को विराम दे देते हैं।

श्रीकांत वर्मा पर मुक्तिबोध का अत्यधिक स्नेह रहा है। अपने से उम्र में छोटे रहने के बावजूद भी मुक्तिबोध उन्हें सम्मान से ही अपने पत्रों में सम्बोधित करते रहें हैं। श्रीकांत भी उन्हे हृदय भर सम्मान एवम् सौहार्द देते रहें हैं। उनसे अपनी पहली मुलाकात के बारे में श्रीकान्त कहते हैं, कि *" पहली ही मुलाकात में मुझे मुक्तिबोध अत्यंत प्रबुध्द किन्तु सरल व्यक्ति लगे। उनके चेहरे पर गरीबी की मार थी, पर स्वाभिमानी होने की क्षमता भी स्पष्ट दिखाई पड़ती थी।"*[139] एक बार श्रीकांत जी का मुक्तिबोध से परिचय हुआ, फिर वह प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होता गया। मुक्तिबोध के पत्र श्रीकांत के लिए रेगिस्तान में चलते हुए आदमी को हरित भूमि की तरह दिखाई पढ़ते हैं। 13/12/1963 के पत्र में वह कहते हैं कि *"आपका पत्र आता है तो बहुत करीब से आपकी आवाज सुनाई पड़ती है। रेगिस्तान में चलते हुए आदमी को अचानक हरित भूमि दिखाई पड़ जाए, वैसा ही अनुभव होता है।"*[140]

---

[138] वही, पृष्ठ- संख्या - 209

[139] महागुरू मुक्तिबोध: जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर, कान्तिकुमार जैन, सामयिक प्रकाशन, नई-दिल्ली, संस्करण: 2018, पृष्ठ-संख्या - 215

[140] मेरे युवजन मेरे परिजन (ग.मा.मुक्तिबोध के नाम पत्र) - सं. - रमेश गजानन मुक्तिबोध , अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली , पहला सं : 2007, पृष्ठ संख्या - 270

शमशेर बहादुर सिंह मुक्तिबोध के घनिष्ठ रहें हैं। वह केवल मुक्तिबोध के व्यक्तित्व को ही नहीं पसन्द करते बल्कि उनकी कविताओं से भी गहरा जुड़ाव महसूस करते हैं। शमशेर अपने 13/11/1956 के पत्र में मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *''तुम्हारी कविताओं का मैं पहले से अधिक प्रेमी हो गया हूँ। सच कहता हूँ।''*[141] साप्ताहिक पत्रिका 'नया खून' में मुक्तिबोध का नाम देखकर उन्हें अच्छा लगता है। सन् 1961 का पत्र जिसकी निश्चित तिथि ज्ञात नहीं, शमशेर राजनाँदगाँव में मुक्तिबोध के परिवार के साथ बिताए गए छ: दिनों को याद करते हुए उन्हें लिखते हैं, कि *''वास्तव में वहाँ सिर्फ़ नरेश की और महिमा की कमी थी, बस्। भाभी जी भी कैसी समर्थ भाभी जी हैं। ईश्वर सदैव उन्हें सुखी रखे और खूब सुखी रखे (...यानी तुम्हें) पिता जी का भी गम्भीर, सहज व्यक्तित्व भूल नहीं सकूँगा।''*[142]

अशोक वाजपेयी मुक्तिबोध से अपनी पहली भेंट के संदर्भ में बताते हैं कि *''1957 में इलाहाबाद में हुए प्रसिध्द साहित्यकार सम्मेलन में मेरी उनसे पहली बार भेंट हुई।''*[143] उस वक्त वाजपेयी जी की उम्र मात्र सत्रह वर्ष की थी। उसके बाद मुक्तिबोध के प्रति उनका आत्मीय रुझान उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। उनकी कविताओं से इतना लगाव की साल, छ: महीनो में एकाध कविता ही किसी पत्रिका में पढ़ पाने की शिकायत करते हैं। मुक्तिबोध की बीमारी की सूचना पाकर वाजपेयी जी विगलित हो जाते हैं, और उसमें भी ऐसी खराब हालत में मुक्तिबोध द्वारा इस तरह से विस्तारपूर्वक उत्तर पाकर वह भाव विह्वल हो उठते हैं। अपने 17/02/1964 के लिखे पत्र में वह उन्हें लिखते हैं, कि *''आपने इतनी खराब हालत में भी मेरे पत्र का उत्तर दिया है। इसने मुझे विगलित कर दिया। एक बीमार अधेड़ लेखक जो इतना रोग ग्रस्त है कि बिस्तर से उठना*

---

[141] वही, पृष्ठ- संख्या - 276

[142] वही, पृष्ठ- संख्या - 276

[143]आलोचना (पत्रिका) - प्रधान सं. - नामवर सिंह , राजकमल प्रकाशन , 55वाँ अंक, जुलाई-सितम्बर- 2015, पृष्ठ संख्या - 69

डॉक्टरों ने बाधित कर रखा है, एक युवा लेखक को उसके पत्र का इतने विस्तार से उत्तर देता है और आखिर में यह लिखना नहीं भूलता कि आपसे मिलने की बहुत तबीयत होती है- मुझे नही मालूम कि जीवन में इससे अधिक मानवीय और मार्मिक प्रसंग मैं याद कर सकता हूँ।''[144]

के. पार्थसारथी मुक्तिबोध के राजनाँदगाँव के मित्र रहें हैं। वह अंग्रेजी के प्राध्यापक रहें और मुक्तिबोध हिन्दी के, दोनों में गहरी अंतरंगता थी। वे साथ-साथ घूमने जाया करते थें। मुक्तिबोध के भावनात्मक एवं स्नेहपूर्ण पत्र को पाकर वह गहरी कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपने 18/06/1962 के पत्र में लिखते हैं, कि *"I am extremely glad and sincerely thankful to you for your very feeling and affectionate letter that there is one person who understands me in right. I think is an achievement of my personality."*[145] इसी पत्र में वह उन्हें लिखते हैं, कि जब कभी भी मैं किताब उठाता हूँ, तो मुक्तिबोध मेरे सामने कभी प्रेरणात्मक तो कभी उत्साहवर्धक होते हैं।

अग्नेश्का कोवालस्का के लिए पहली पहल मुक्तिबोध से परिचय का सबब उनकी कवितायें ही बनी। वह बनारस से निकलने वाली पत्रिका 'कवि' (अप्रैल 1957) में मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता पढ़कर बहुत प्रभावित हुई थी। बाद में मध्यप्रदेश की यात्रा के दौरान वह मुक्तिबोध से राजनाँदगाँव में ही मिली। उनके मृदु और आत्मीय स्वभाव से अग्नेश्का जी की सारी झिझक अनायास ही मिट गई। 27/10/1962 के पत्र में वह मुक्तिबोध के सद्व्यवहार एवं उनकी पत्नी के मातृ-स्नेह से अभिभूत होकर लिखती है कि *"मैं खुद क्या बताऊँ, अनुभूति हुई जिसके लिए मेरे हृदय में गहन श्रध्दा फैल गई है, और*

---

144 मेरे युवजन मेरे परिजन (ग. मा. मुक्तिबोध के नाम पत्र) - सं. - रमेश गजानन मुक्तिबोध ,अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली , पहला सं : 2007, पृष्ठ संख्या -317

145 वही, पृष्ठ- संख्या -337

मानवता का सही अर्थ आँखों के सामने चमक उठा है और आपकी श्रीमती का सहृदय व्यवहार, प्रसन्नता और मातृस्नेह कभी न भूल सकूँगी।''[146]

विलायतीराम घेई मुक्तिबोध के कक्षा 9वीं से लेकर बी.ए. तक सहपाठी रहें हैं, उनकी मित्रता का कारण भी साहित्यिक अभिरुचि ही रही है। मुक्तिबोध के विवाह की खबर पाकर वह रोमांचित हो जाते हैं। अपने 10/01/1939 के पत्र में वह मुक्तिबोध से अपनी भावनात्मक प्रतिक्रिया साझा करते हुए उन्हें लिखते हैं, कि *"I am extremely happy to hear your news and I am sharing in full the delight of your heart. What was only a dream is now a reality but to a newly awakened idle like me it still seems to possess a dream like halo and thrill."*[147] आगे इसी पत्र में उनकी शादी में न पहुँच पाने की विवशता को भी प्रकट करते है।

अंतत: निष्कर्ष रुप में यही कहा जा सकता है, कि इन सभी साथियों, मित्रों की संवेदनापूर्ण प्रतिक्रियाओं के बहाने मुक्तिबोध के भीतर संवेदना का जल और ज्यादा समृद्ध ही हुआ होगा, इसमें संदेह नहीं। यहां मुक्तिबोध का ही लिखा वह वाक्य याद आता है, जो कभी उन्होंने वीरेन्द्रकुमार जैन से साझा किया था, नागपुर से लिखे 12/02/54 के पत्र में वह कहते हैं कि *" जिन्दगी बड़ी तल्ख है; लेकिन इस तल्खी के बीच मिठास के अपने अमर क्षण भी हैं।"*[148] मुक्तिबोध ने यह वाक्य एक विशेष मन:स्थिति में लिखा था। लेकिन उनके जीवन की यात्रा की तल्खी को देखकर यह कहना सर्वथा उचित होगा, कि उनके मित्रों के संवेदना से सने पत्र उस तल्खी के बीच जीवन के मिठास की तरह अमर क्षण बनकर आतें होंगे, और उन्हें प्रेरणा देते होंगे।

---

[146] वही, पृष्ठ- संख्या -341

[147] वही, पृष्ठ- संख्या -364

[148] मुक्तिबोध समग्र (खण्ड - 7)- सं. नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला-संस्करण :2019, पृष्ठ-संख्या - 435

3.2-जीवन संघर्षों की अभिव्यक्तियाँ

मुक्तिबोध को सम्बोधित पत्रों में जहाँ उनके लेखक, साहित्यकार मित्रों की निजी संवेदनाएँ, भावाभिव्यक्तियाँ, मुक्तिबोध के प्रति उनकी अंतरंगता, उनकी प्रतिक्रियाएं इत्यादि पाई जाती हैं। तो वहीं उन लेखक मित्रों के जीवन संघर्ष भी इन पत्रों का हिस्सा बनते हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि जीवन की विपन्नता, जीवन की त्रासदी को, अपने आंतरिक और बाह्य संघर्ष को व्यक्त करने की सहजता मित्र के साथ ही ज्यादा सुगम होती है। इसलिए इन पत्रों में जीवन के प्रवाह में आने वाली बाधाएं, और उनसे उपजी पीड़ाएँ मित्र मुक्तिबोध के समक्ष अनायास ही प्रकट होती हैं।

प्रभागचन्द्र शर्मा अपने 01/07/1938 के पत्र में अपनी चित्त की ढुलमुल मन:स्थिति, स्वास्थ्य के निरन्तर गिरते जाने की व्यथा को मुक्तिबोध के साथ साझा करते हैं। वह उन्हें लिखते हैं कि *"मैं कुछ दिनों से चित्त की ढुलमुल स्तरों में बह रहा हूँ। कुछ जीवन के प्रति विद्रोह जागा चाहता है। तीन-तीन दिन हो जाते हैं, खाना नही खा पाता, आधी-आधी रात बीत जाती है, नींद नही आती। इससे मेरे मन प्राण पर कोई असर नहीं होता। हाँ, शरीर स्वास्थ्य में क्या होता है नहीं कह सकता। तुम्हें कभी मिलूँगा तो बताना क्या मैं स्थूल*

दर्शन में दुबला दिख पड़ने लगा हूँ?"[149] इसी पत्र में वह आगे लिखते हैं, कि जीवन का गीत भंग हो गया है, हम कला पारखी बनने के पहले कलाकार बन चले, परिणाम क्या हुआ? हम कलाप्राण के मात्र पारधी सिध्द हुए। हमने वस्तु के प्राण का मूल्य भुलाकर आड्म्बरों को धड़ल्ले से सृष्टि की है। परिणामत: हमने जीवन कला को मृत बना डाला।

प्रभाकर बलवंत माचवे अध्यापकी और उज्जैन दोनों को 1948 में एक साथ छोड़ने के बाद इलाहाबाद में आल इण्डिया रेडियों की नौकरी में आएं, जहाँ पर लिखने पढ़ने पर यहाँ तक कि बोलने पर भी अंकुश लगे होने पर अपने 17/09/1949 के पत्र में मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *''मैं इलाहाबाद से और इस नई सरकारी नौकरी से कोई संतुष्ट नहीं - क्योंकि लिखने पढ़ने पर, बोलने तक पर सब हलचलों पर मुहबन्दी, रोक और अंकुश है।''*[150]

अज्ञेय अपने 04/03/1948 के पत्र में जीवन में बढ़ते दबाव और काम की बढ़ती अधिकता के बारे में मुक्तिबोध से कहते हैं, कि *''मैं ठीक हूँ, यद्यपि जीवन का दबाव क्रमश: शरीर को तोड़ रहा है, इसका अनुभव करता हूँ । काम बहुत अधिक है, इसमें सन्तोष पाने के मार्ग कम, शिकायत न करना एक बात है, पर धीरज में अछूते रह जाना दूसरी! अछूता रह जाऊँ ऐसा बना नहीं। दुर्बलता कहिए, जीवन से intense लगाव कहिए frustration कहिए।''*[151] इसी के साथ वह आगे इस पत्र मे संकेत करते हैं, कि वह मार्च में ही जबलपुर आ रहे थे, चुपचाप लेकिन सुभद्रा जी के दुखद निधन से उनका सारा उत्साह ही टूट गया।

---

[149] संपादक - मुक्तिबोध, रमेश गजानन, वाजपेयी,अशोक, मेंरे युवजन मेंरे परिजन (ग.मा.मुक्तिबोध के नाम पत्र) राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण: 2007, पृष्ठ-संख्या-21

[150] वही, पृष्ठ-संख्या-37

[151] वही, पृष्ठ-संख्या-52

नारायण विष्णु जोशी अपने एक पत्र 01/02/1947 में मुक्तिबोध के जीवन संघर्ष को परिस्थितियों के दबाव को, उनकी कविता में परिणत होते हुए पाते हैं, 'हंस' पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित उनकी कविताओं को पढ़ते रहे हैं। वह उन्हें लिखते हैं, कि *"I was getting glimpses of your spiritual life from them. No man could have written those poems unless he was pressed hard by the circumstances and was required to drink the bitter cup. I however kept on watching and I find that your struggle is perpetually going on and I do not know how much poetry is going to come out to it.''*[152]

वीरेन्द्र कुमार जैन अपने 17/09/1939 के पत्र में मुक्तिबोध के द्वारा ट्रेजडी को प्यार करने के शगल के कारणों को रेखांकित करते है। जिसे वह मूल रुप में जीवन शक्ति और कर्म शक्ति के अभाव के कारण मानते हैं, वह विशुध्द मानव आत्मा से बड़ी शक्ति इस सृष्टि में दूसरी नहीं मानते। वह बताते हैं, कि सारी बाहय शक्तियों का हम पर होने वाला दबाव केवल इसलिए है, कि हमारी सम्पूर्ण आत्म शक्ति चैतन्यमय और जागृत नहीं है। वह मुक्तिबोध को इस पत्र में लिखते हैं, *कि "मेरे आत्मीय बन्धु, मैं तुमसे फिर कहूँ, अपने सरल, सुगम, सदभावनामय जीवन से सीधे विषम, अभावमय, बिंधे हुए जीवन को न नापो। वैसे तो मेरे साथ न्याय न कर सकोगे। साढ़े बाईस-तेईस वर्ष के इस छोटे से जीवन में मैने जितना सहन किया है- जिन–जिन विषम यन्त्रणाओं में गुजरा हूँ और जो भीषण निराशा की चोटें मैंने सही हैं, उनका तुम अंदाज नहीं लगा सकते। पिछले तीन वर्ष के मेरे अन्तरंग जीवन के inferno में मैं कभी अपने किसी मित्र को न ले गया - वह कहानी अभी भी अनकही- untold है और शायद जीवन के अन्तिम क्षण तक भी अनकही ही रहेगी - और जीवन की उस संध्या में शायद मेरी चिता के साथ बुझ जाएगी। कोई भी मित्र या स्नेही ऐसा*

---

[152] वही, पृष्ठ-संख्या-62

नहीं है, जीवन में, जो मेरी आत्मा की उस अभेद्य काँच की खिड़की तक आ सके।''[153] आगे इसी पत्र में वह उन्हें लिखते हैं, कि *''जीवन में प्यार-प्रेम का नाटक भी हुआ है, और बहुत हुआ है - बहुत चोटें इस दिल ने सही हैं- बहुत सी दुलारपरी कोमल गोदियों और मोह भरे आँचलों के आमन्त्रणों ने इस जीवन पर खींचातानी की है- पर सभी ने मिलकर एक supreme tragedy को जन्म दिया है। पर उन सबका मैं चिर-ऋणी हूँ क्योंकि उन्होंने जीवन को बहुत-सी जलन, घाव और दर्द दिए हैं। और यों आत्म-यंत्रणा की विषम-ज्वालाओं मे तप-तप कर मेरी आत्मा तेजस्वी, सशक्त और खरी हो गई है। तपाएँ सोने की तरह।''*[154] वह अपनी जिन्दगी में नि:संग, अकेला रहने और उसी में सुख पाने की बात भी करते हैं।

मुक्तिबोध के अनुज भाई शरदचन्द्र माधव मुक्तिबोध अपने 14/01/1942 के पत्र में इन्दौर में अपनी उकताई हुई मनःस्थिति को प्रकट करते हैं। अकेले ही कला मार्ग पर उत्साह से आगे न बढ़ पाने की, अपनी विवशता को जाहिर करते हैं। वह उन्हें लिखते हैं, *कि ''आपको याद है न पहले एक पत्र में मैंने लिखा था कि मैं उत्साह में हूँ ... मेरे सारे काम खूब उत्साह के साथ चल रहे हैं। वह सब उस समय के लिए ठीक था। होगा। मेरे साथ इस समय कोई उत्साह नहीं बचा है। एक तीक्ष्ण longing से सारा जीवन भरा है। अकेले ही कला मार्ग पर चलने की हिम्मत जैसे होकर भी नहीं है। कोई चाहिए जो पीठ के पीछे रहकर दिलासा देता रहे।''*[155] और वह कोई नि:संदेह मुक्तिबोध रहे हैं, जिनसे पीठ के पीछे से दिलासे देने का आग्रह शरदचन्द्र करते हैं।

---

[153] वही, पृष्ठ-संख्या-72

[154] वही, पृष्ठ-संख्या-73

[155] वही, पृष्ठ-संख्या-98

जीवन निर्वाह के लिए आर्थिक तंगी मात्र मुक्तिबोध को ही नहीं वहन करनी पड़ी थी, बल्कि उनके भाई भी इससे अछूते नहीं रहें। अपने 27/12/1945 के पत्र में शरदचन्द्र उन्हें लिखते हैं, कि *"Can you suggest some literary work for me which would pay? say some translation? I am really in great need of money and cannot fulfill my ordinary needs.''*[156]

'प्रदीप कार्यालय' से सम्बन्धित जगत शंखधर का मुक्तिबोध से महज प्रकाशक, संपादक का; मात्र किसी लेखक या साहित्यकार के मध्य केवल औपचारिक सम्बन्ध नहीं रहा है, बल्कि इससे अधिक उनमें आत्मीयता की मिठास और भ्रातृत्व का भाव झलकता है। मुक्तिबोध के आर्थिक संकट के प्रति चिन्तित होकर, और यह जानकर कि वह सरस्वती प्रेस से जाने वाले हैं, उनसे अनुरोध करते हैं, अपने 05/10/1946 के पत्र में वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *''तुम अब मेरी तरह निठल्ले नहीं हो कि आगे की चिंता न कर दुनिया चलाओ। अब तुम पति हो, पिता हो और भले आदमी हो... मेरा तो अनुरोध है कि यह बिना जाने ही कि अभी तक व्यवस्था क्या है कि तुम अपने कुल पगार के रुपए और यदि लेखन से और भी रुपए प्राप्त हों तो अपनी श्रीमती जी के हाथ पर रख दिया करो। भारतीय नारी से बढ़कर बजट को balance करने वाला दूसरा व्यक्ति नहीं।''*[157] आगे इसी पत्र में वह उन्हें स्पष्ट करते हैं, कि औसत भारतीय व्यक्ति की आमदनी की अपेक्षा हम लोग कहीं अधिक कमाते हैं, फिर भी हम और आप एक से फटेहाल रहते हैं।

भारतभूषण अग्रवाल का जीवन संघर्षों से भरा रहा है। सन् 1941 में एम. ए. करने के बाद काम के तलाश में कलकत्ता में भटकें, नौकरियाँ छोड़ी-पकड़ी, हाथरस में बिजली मिल हाउस में काम करने की अपनी नापसंदगी को आत्मीय मुक्तिबोध से 18/03/1948 के पत्र में साझा करते हुए उन्हें लिखते हैं, कि

---

[156] वही, पृष्ठ-संख्या-105

[157] वही, पृष्ठ-संख्या-154

"बिजली मिल के अपने काम को मैंने कभी पसन्द नहीं किया है, वह मुझे लाचार होकर करना पड़ा है। इसलिए 'प्रतीक' जैसी बोदी योजना को भी आधार बनाकर मैंने चले जाना पसन्द किया। यह दूसरी बात है, कि मैं बच नहीं पाया, और लौटकर आना पड़ा। किन्तु लौटकर आने की मुझे कोई खुशी नहीं है और आज की देश-दशा में मेरा मिल में रहना हमारे सारे सिध्दान्तों और आदर्शों, विश्वासों की निंदा है।''[158] इसी पत्र में वह मुक्तिबोध की आर्थिक मजबूरियों की बात जानकर दुखी होते हैं। अपनी कमजोरी पर स्वयं इतना त्रस्त रहते हैं, कि उन्हें इस वक्त मुक्तिबोध का पीठ थपथपाना भी बुरा लगता है।

नेमिचन्द्र जैन मुक्तिबोध के अंतरंग मित्र रहें हैं। इलाहाबाद के संघर्ष के दिनों में नेमिचन्द्र जैन अपनी मन:स्थिति, अपनी टूटन और जीवन में आई नीरसता को अपने अजीज मित्र मुक्तिबोध से साझा करते हुए उन्हें 19/01/1950 के पत्र में वह लिखते हैं, *कि "I often fill i have got submerged in the humdrum of life in the process of trying to live, and naturally the living itself has been left out. Most of the finer points of life have as if become blunt, obsolete, pointless. probably it is true. probably I am being subjective and silly. don't know and I feel at a loss about everything. This makes me sort of stunned, the initiative disappears and I start drifting a float on the ocean of life... often there is such a compelete vacuum within that there is nothing to communicate to anybody these years have made life so different.''*[159] आगे इसी पत्र में वह यह भी लिखते हैं, कि सब कुछ टूटा फूटा सा लगता है, अधिकांश विश्वास खो चुका हूँ। और कोई उत्साह नहीं रह गया है।

---

[158] वही, पृष्ठ-संख्या-162-163

[159] वही, पृष्ठ-संख्या-175

वहीं प्रकाशचन्द्र गुप्त अपनी बीमारी और कठिन परिश्रम न कर पाने के कारणों को मुक्तिबोध से साझा करते हुए अपने 08/09/1955 के पत्र में वह लिखते हैं, कि- *“बीमार तो मैं काफी दिन से हूँ, किन्तु कुछ न कुछ स्वास्थ्य बराबर सुधर भी रहा है। मुझे high blood pressure हो गया था और अत्यन्त हलका पक्षाघात। दाहिना हाथ और पैर सुन्न पड़ गए थे। अब ठीक हूँ काफी, किन्तु दाहिने अंग अब भी कुछ कमजोर हैं। 12 सितम्बर तक छुट्टी पर हूँ। फिर यूनिवर्सिटी जाने लगूँगा। किन्तु डाँक्टर का कहना है, कि कठिन परिश्रम कुछ वर्ष नहीं कर सकूँगा।”*[160] एक अन्य पत्र में भी अपनी इसी बीमारी के कारण साहित्य और उसकी नई पौध की वह कोई विशेष सेवा कर सकेंगे, इसका उन्हें संशय रहता है, आत्मविश्वास और आत्मबल जैसे खो चुके होते हैं।

हरिशंकर परसाई लम्बे समय से पत्र न लिख पाने और मुक्तिबोध के पत्र का जवाब न दे पाने के कारण, उनके रुष्ट होने की आशंका से ग्रस्त होते हैं। अपने 16/11/1963 के पत्र में वह उन कारणों को रेखांकित करते हैं, जिसके कारण ऐसी स्थिति बनी। वह उन्हें लिखते हैं, कि *“इधर डेढ़-दो महीनों से बीमारियों से परेशान रहा। बड़े भांजे को टाइफ़ाइड भयंकर रुप से रिलेप्स हुआ, फिर बहिन और मैं भी बीमार पडा। अब सब सुधार पर है। दो महीनों से काम धाम ठप्प है। अब कुछ शुरु किया है।”*[161] आगे इसी पत्र में वह मुक्तिबोध की आर्थिक समस्या को लेकर उन्हें लिखते हैं, कि आपके समाचार प्रमोद से जाना, कष्ट कथा का अन्त नहीं है। इधर मैं खन्ना के पीछे पड़ा रहता हूँ, वह मुझे अपनी दयनीय हालत बताता है। जिससे मुक्तिबोध की रायल्टी का पैसा डूबने की आशंका परसाई जी को बनी रहती है।

---

[160] वही, पृष्ठ-संख्या-184

[161] वही, पृष्ठ-संख्या-241

श्रीकांत वर्मा के संदर्भ में कांति कुमार जैन लिखते है कि *"श्रीकांत का नाम संघर्षकांत वर्मा होता तो ज्यादा सही होता। उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया।"*[162] ऐसे संघर्षशील व्यक्ति के प्रति मुक्तिबोध का अतिरिक्त स्नेह रहा है, उन्होनें तो एक पत्र में मनुष्यता में विश्वास न खो पाने के लिए भी श्रीकांत को सम्बोधित किया। वही श्रीकांत अपने दिल्ली के कटु अनुभवों को मुक्तिबोध से 02/10/1956 के एक पत्र में साझा करते हुए लिखते हैं, कि *"दिल्ली अजीब शहर कलाकारों के रहने लायक नहीं है। फ़ैशन परस्त सभ्यता की कृत्रिम जिन्दगी का द्विप है। अपना कोई नजर नहीं आता। मैं छोटे शहर का रहने वाला हूँ, इसलिए और अजीब अनुभव करता हूँ। लगता है, तालाब की मछली को समुंद्र में फेक दिया हो। क्या करुँ लाचारी है। तबीयत घबराती है।"*[163] एक अन्य पत्र जो 24/02/1958 का है, जिसमें वह अपनी तंग स्थिति को मुक्तिबोध से जाहिर करते हुए वह लिखते हैं, कि *"मेरी हालत यहाँ बहुत खराब है। वेतन इतना कम है और घर की भी चिंता करनी पड़ती है, अपनी भी। दूसरी नौकरी तलाश कर रहा हूँ। मगर नौकरी जान-पहचान और खुशामद से मिलती है। मुझमें यह गुण नहीं! डेढ़ साल में भी समर्थ लोगों से सम्पर्क नहीं बना पाया।"*[164] वह आगे इसी पत्र में यह भी जाहिर करते हैं, कि उनकी यही सब कठिनाइयां हैं। व्यक्तित्व की इकाईयाँ टूटी हुई है हर रात ही उन्हें जोड़ते हैं, सँजोते हैं, और फिर एक काव्य यात्रा पर निकल पड़ते हैं। वह कहते हैं कि जाने कब तक यह सब चलता रहेगा।

---

[162] जैन,कांतिकुमार, महागुरू मुक्तिबोध जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर, सामयिक प्रकाशन, नई-दिल्ली, संस्करण : 2018, पृष्ठ-संख्या-218

[163] संपादक - मुक्तिबोध, रमेश गजानन, वाजपेयी,अशोक, मेरे युवजन मेरे परिजन (ग.मा.मुक्तिबोध के नाम पत्र) राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण: 2007, पृष्ठ-संख्या-245

[164] वही, पृष्ठ-संख्या-246

एक लम्बे अंतराल के बाद शमशेर बहादुर सिंह जिला दुर्ग, मध्यप्रदेश से 25/01/1961 के पत्र में अपने मित्र मुक्तिबोध से अपनी ऊब और थकान से भरी जिन्दगी की कड़वाहट को साझा करते हैं, साथ ही अपने इलाज के बारे में बताते हुए उन्हें वह लिखते हैं, कि *''तुम्हें मालूम ही है, कि मैं यहाँ हूँ? नहीं मालूम होगा। तो सुनो मैं काफी अरसे से यहाँ हूँ। मगर थका हुआ, बहुत थका हुआ, और एक अजब उबन से भरा और अन्दर-अन्दर बड़ी कड़वाहट । तेजबहादुर, मेरे भाई, मेरा इलाज करते रहें।''*[165] शमशेर इसी पत्र में बताते हैं, कि वह अब काफी ठीक-ठाक हैं। उन्हीं दिनों मुक्तिबोध से मिलने की, उनसे गपशप करने की, कुछ साहित्यिक तो कुछ जीवन के सुख दुख की बात-चीत करने की अपनी इच्छा जाहिर करते हैं।

प्रमोद कुमार वर्मा मुक्तिबोध के जबलपुर के साथी, 'वंसुधा' के संपादक परसाई के अनौपचारिक सहयोगी, मुक्तिबोध के भाई शरदचन्द्र की बीमारी के प्रति चिंता और परसाई जी के बहनोई की मृत्यु से गहरे रुप से व्यथित होते हैं। वह अपने 06/01/1958 के पत्र में मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि - *''परसाई जी ने बाताया कि यहाँ से लौटते ही आप 'बबन भाई' की बीमारी को लेकर बहुत परेशान रहे हैं। हम लोगों को भी चिंता है। कृपया लिखें कि उनकी तबीयत अब कैसी है। मैं इसके पहले नहीं लिख सका। कारण कि मैं स्वयं बहुत स्वस्थ नहीं था, फिर मेरी बहन शशि बीमार पड़ गई। वह आप जानते हैं, मेरे इस परिवार की रीढ़ की हड्डी है। इसके सिवाय परसाई जी के परिवार की दुखद घटना ने हम सब पर भी प्रभाव डाला।''*[166] वह आगे यह भी स्पष्ट करते हैं, कि आपको अब तक तो पता चल ही गया होगा कि उनके मँझले बहनोई गुजर गएं। अब उनकी बहिन और बहिन के बच्चों का सवाल भी उनके सामने है।

---

[165] वही, पृष्ठ-संख्या-277

[166] वही, पृष्ठ-संख्या-287

के. पार्थसारथी मुक्तिबोध के राजनांदगाँव के साथी रहे हैं, अपने 18/06/1962 के पत्र में अपने बच्चे के आँखों की समस्या के बारे में मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"The child has developed some serious eye trouble. Expert eye specialists have advised and operation in the fall of 62. We are assured he`ll regain his lost sight completely after the operation.''*[167] वह आश्वस्त रहते हैं, कि ऑपरेशन के बाद उसकी खोई हुई दृष्टि वापस आ जाएगी। जिसे वह मुक्तिबोध से साझा करते हैं।

आग्नेश्का कोवालस्का कई महीनों से मुक्तिबोध को पत्र न लिख पाने के कारण अपराध भावना से ग्रसित होती हैं। संकोच करते हुए भी वह उन कारणो को रेखांकित करती हैं, जिसकी बदौलत पत्र न लिखने में इतना लंबा अंतराल आया। अपने 15/11/1963 के पत्र में वह मुक्तिबोध को लिखती हैं कि - *"सफाई में जो भी कहूँ, उससे मेरा अपराध नहीं मिटेगा। लेकिन हुआ यह, कि काफी देर तक मैं अपनी कोई भी अच्छी खबर नही सुना सकती थी: बीमारी, मायूसी, तरह-तरह के संकट और अव्यवस्था में उलझकर, शारिरिक और मानसिक दृष्टि से अपने को बिल्कुल पराजित महसूस करती थी। बाद में पता चला कि उसका कारण कोई अलौकिक तो नहीं था- यों कुछ anaemia लग गया, उसके साथ रक्तचाप इतना धीमा पड़ गया, कि सारी vitality नहीं के बराबर हो गई, तब मामूली फिक्रें पहाड़ बनकर सामने खड़ी हो जाती थी।''*[168] फिर वह बताती हैं, कि आगे सुइयों-गोलियों की मदद से मामले को संभाला गया। ऐसी उलटी स्थिति में वह कुछ भी लिखने की मंशा नहीं रखती थी; जिससे ऐसी स्थिति बनी।

---

[167] वही, पृष्ठ-संख्या-337

[168] वही, पृष्ठ-संख्या-349

अंततः यह कहा जा सकता है कि इन प्रसंगों के बहाने जीवन संघर्षों की अभिव्यक्तियाँ सहज रूप में ही प्रकट होती हैं। जहां व्यक्तिगत स्वास्थ्य से लेकर, साहित्यिक संघर्ष, आजीविका संघर्ष और पारिवारिक संघर्ष जैसे मानव जीवन के तमाम संघर्ष की अनेक छटाएँ यहाँ मौजूद हैं।

3.3-साहित्यिक गतिविधियां

मुक्तिबोध को संबोधित पत्रों में साहित्यिक गतिविधियों की चर्चा होना उतना ही स्वाभाविक या सहज है, जितना उनका साहित्यकार होना। उनको संबोधित पत्रों को खँगालने के उपरांत यह कहना तो गलत न होगा, कि उनके ज्यादातर संपर्क साहित्य की दुनिया से पैवस्त लोगों से रही हैं। उनकी मित्र मंडली अधिकांशतः साहित्यकारों की मित्र मंडली रही है। इस मित्र मंडली में उनके कई निकटतम् मित्र रहे हैं, तो कई पत्र पत्रिकाओं के संपादक रहे हैं। कई उनके रचनात्मकता से खासा प्रभावित भी दिखाई देते हैं, तो कइयों द्वारा विशेष संदर्भ में लेखन का आग्रह भी दिखाई पड़ता है। इन पत्रों में साहित्यिक गतिविधियों से

मुक्तिबोध की ज्यादातर प्रत्यक्ष हिस्सेदारी और कमतर परोक्ष हिस्सेदारी रही है। जो जाहिर है, मुक्तिबोध को केन्द्रीयता प्रदान करता है। गौरतलब है कि इन सब के आधार पर उनकी रचनात्मक गतिविधियों की शिनाख्त हो सकेगी। साथ ही उनके समकालीन साहित्यकारों, पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों के साथ उनकी सहभागिता को भी रेखांकित किया जा सकेगा। इस तरह उस नेपथ्य से भी रूबरूँ हुआ जा सकेगा, जिससे गुजरकर कोई भी रचनात्मकता हमारे सामने उपस्थित होती है। इसे रचनात्मक व्यक्तित्व के रोचक प्रसंगों की भी तरह स्वीकार किया जाना चाहिए।

मुक्तिबोध के लेखन के शुरुआती दौर में उनकी कहानी पर पात्रों के साथ न्याय न कर पाने की जैनेंद्र कुमार की सद्भावना पूर्ण टिप्पणी मिलती है। मुक्तिबोध को संबोधित जैनेंद्र अपने 01/12/37 के पत्र में लेखक की अपने पात्रों के प्रति तटस्थता की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। वह उन्हें लिखते हैं कि *"मेरे खयाल में लिखने में अपने प्रति मुरव्वत बरतना ठीक न होगा। पात्रों के प्रति न्याय करना है तो अपने प्रति निर्मम होना होगा। पता चलता है कि लेखक ने अपने को रामप्रसाद में रखा है, और वह रामप्रसाद की मनोभावना के प्रति सदय है। आप कहो, ऐसा है कि नहीं? और फिर खुद ही बताओ, ऐसा होना चाहिए भी क्या? एक के प्रति सदयता दूसरे के प्रति निर्दयता पर बनती है, इससे लेखक को दया को भी छोड़ना होगा।"*[169] वह मुक्तिबोध से इस संदर्भ में उनकी राय भी पूछते हैं।

अज्ञेय के तारसप्तक के संदर्भ में मुक्तिबोध को संबोधित कई पत्र प्राप्त होते हैं। पहला दिनांक 10/02/38 का पत्र प्राप्त होता है, जिससे यह तो स्पष्ट हो जाता है, कि तार सप्तक की रूपरेखा सन् 1938 से ही बन रही थी। जिसकी परिणति सन् 1943 के आखिरी महीनों में हुई। बतौर संपादक इस पुस्तक की परिणति में अज्ञेय को जितनी जद्दोजहद करनी पड़ी, वह तमाम संघर्ष इन पत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करती

---

[169] संपादक - मुक्तिबोध, रमेश गजानन, वाजपेयी,अशोक, मेरे युवजन मेरे परिजन (ग.मा.मुक्तिबोध के नाम पत्र) राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण: 2007, पृष्ठ-संख्या-40

हैं, अपने 10/02/38 के ही पत्र में वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"आप सब इस प्रकार पल्ला झाड़कर अलग हो जाएंगे, और मैं, जिसने आरंभ में कोई उत्साह नहीं दिखाया था, इस प्रकार मुसीबत में फँस जाऊंगा, ऐसी आशा नहीं थी।... यह पत्र मैं चार व्यक्तियों को लिख रहा हूं, (गालियां केवल प्रभाकरजी, नेमि और अंशतः मुक्तिबोधजी के लिए है, वीरेंद्र जी बरी हैं) प्रभाकर माचवे ने कविताओं का कोटा लगभग पूरा कर दिया है, दो-एक कविताएँ और भेज दें तो भेज दें। जो कविताएँ आई हैं, उनमें कुछ प्रयोग बड़े भीषण हैं, और कुछ कविताओं के अर्थ शीर्षासन करके भी नहीं समझे जा सकते।"*[170] और वह कुछ मुहावरों के चित्र प्रयोग के बारे में भी इंगित करते हैं; कहते हैं, कि अशुद्धि प्रयोगात्मकता की नहीं विशुद्ध negligence की है। प्रभाकर ध्यान दें तो यह उनकी कविता और संग्रह के लिए अच्छा होगा, पर इसके लिए कविताएँ लौटाना तो भागते भूत की लँगोटी को भी छोड़ देना होगा। इसके बाद पत्र सीधे सन् 1942 की प्राप्त होती है। सन् 1942 के पहले कोई पत्राचार प्राप्त नहीं होता। इन पत्रों में तार सप्तक के लिए कविताएं भेजने, पुस्तक के मुद्रण की व्यवस्था और पुस्तक की संरचना के संदर्भ में भी बातचीत शामिल है। अपने 29/09/42 के पत्र में अज्ञेय तार सप्तक के संदर्भ में सलाह मशवरे के लिए मुक्तिबोध को लिखते हैं कि- भूमिका हो कि नहीं? कौन लिखे, प्रत्येक कवि का संक्षिप्त साहित्य-चरित्र हो कि नहीं? अपना लिखा या व्यक्तिगत संबंध के आधार पर एक व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत? कवि अपनी कविता पर अपना छोटा-सा वक्तव्य दे या नहीं? एक्सपेरिमेंटल काव्य में कुछ स्पष्टीकरण होना चाहिए, चाहे स्वयं का हो चाहे दूसरे द्वारा। पर दो पेज से अधिक नहीं। है न? देखिए, रुपया जब आए, कविताएं आनी चाहिए। अन्यथा संग्रह का कार्य होगा ही नहीं। आप लोग आरंभ करेंगे, तभी दूसरों से मांग सकूंगा।

एक अन्य पत्र जो 06/01/43 का है। जिसमें अज्ञेय मुक्तिबोध की कविताओं की पांडुलिपि न पहुंच पाने की शिकायत करते हैं, वह लिखते हैं, कि *"आपने अच्छा छकाया कविताओं की पांडुलिपि कब*

---

[170] वही, पृष्ठ-संख्या-41

पहुँचेगी? सोचता था कि प्रभाकर ही मेरी ओर से आग्रह करते रहे हों, पर इस निद्रालस देश में कौन किसे चेताएगा! यदि पांडुलिपि तैयार न हो तो आप अपनी पांडुलिपि भेज दें, यहाँ नेमिजी और मैं मिलकर नकल और चयन आदि कर लेंगे। देर आप ही की ओर से हो रही है अब, बल्कि अब तो साथ ही कागज के मूल्य का अपना-अपना quoto भी सबको जुटा लेना चाहिए।"[171] एक अन्य पत्र जिसमें तार सप्तक के प्रेस में होने और उसके आधे छप जाने की सूचना अज्ञेय के 24/11/43 के पत्र से मिलती है। इसी पत्र में पुस्तक के दो सप्ताह में छप जाने का आश्वासन भी मिलता है। इसके बाद के पत्र में पुस्तक के प्रकाशित हो जाने की सूचना अज्ञेय के रेलगाड़ी में लिखे गए 09/03/44 के पत्र से ही मिलती है। मुक्तिबोध को तार सप्तक अच्छा लगा यह जानकर अज्ञेय खुशी प्रकट करते हैं, वह लिखते हैं कि *"तार सप्तक आपको अच्छा लगा यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। मुझे भी पहले-पहल अपनी इस पुस्तक को देखकर आनंद हुआ है- न जाने क्यों। यही वास्तव में अपनी लगी। इसमें मेहनत भी मैंने बहुत की है - यदि व छापे में वह बस दिखेगी कैसे? (नेमिजी ने भी बहुत श्रम किया है, उनका कृतज्ञ हूँ। बल्कि सहयोग के नाम पर उन्हीं का नाम ले सकता हूं...) एक पुस्तक छह मास बाद ऐसी और आ सकती है यदि पर्याप्त सहयोग हो-पर हो सके तो कविता नहीं, और कुछ चाहे उसके लिए कुछ नए सहयोगी लाने पड़ें। कुछ सुझाव दे सकते हैं?"*[172] सुझाव के इस विकल्प के रूप में अज्ञेय मुक्तिबोध का तार सप्तक में सहयोग तो लेते ही हैं, दूसरे सप्तक के आयोजन में भी उनसे सलाह लेना वह नहीं भूलते। अपने 04/03/48 के पत्र में वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"दूसरे सप्तक के लिए भी बताइए कौन-कौन कवि लिए जाएँ- नए कवि जिनके ग्रंथ नहीं छपे हैं। इस प्रकार रांगेय राघव नहीं आते, केदार भी नहीं। भवानी प्रसाद जबलपुर वाले की कविताएँ आप ले सकते*

---

[171] वही, पृष्ठ-संख्या-45

[172] वही, पृष्ठ-संख्या-49

हैं? वर्धा के भवानी प्रसादजी ने तो भेज दी है; और चंद्रकुँवर बर्त्वाल की भी आ गई है।"[173] इसी पत्र में वे प्रतीक और समता की भी चर्चा करते हैं। 'प्रतीक' के द्विमासिक होने और उसे जबलपुर में कहीं नहीं आने की ओर इशारा करते हुए मुक्तिबोध का उसके प्रति दायित्व निर्वहन का आग्रह भी करते हैं। 'समता' की संपादकीय और रूप सज्जा की उन्नति की गुंजाइश की ओर भी टिप्पणी करते हैं।

द्वितीय सप्तक में लिए जाने वाले कवियों के प्रति भी मुक्तिबोध की जिज्ञासा रही है, ऐसा आभास होता है। तभी प्रतिक्रिया स्वरूप प्रभाकर बलवंत माचवे अपनी जानकारी के आधार पर उनकी जिज्ञासा का शमन करते हुए अपने 17/09/49 के पत्र में लिखते हैं, कि *"द्वितीय 'तारसप्तक' का कोई अंदाजा नहीं। नागार्जुन, केदार, रांगेय राघव पहले थे- अब शायद वे भी कविताएँ नहीं दे रहे हैं। परंतु शमशेर, हरि व्यास, भवानी मिश्रा, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय आदि निश्चित हैं। एक दो और हो जाएंगे ऐसा सुनता हूं। कब तक छपेगा- खुदा जाने। या कहें "अज्ञेय" हैं।"*[174] इसी पत्र में वह वात्स्यायनजी की कुशलता की भी सूचना देते हैं।

महिलाओं की मासिक पत्रिका 'कमला' में बतौर सहयोगी संपादक शांतिप्रिय द्विवेदी 'कमला' में छपे मुक्तिबोध के लेखों से खासा प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। रचनात्मक जीवटता को लेकर वह अपनी स्थिति सोचनीय बताते हुए मुक्तिबोध का उत्साह वर्धन करते हैं। अपने 24/05/39 के पत्र में वह लिखते हैं, कि *"एक समय था जब अपनी साधारण परिस्थिति में भी मैं असाधारण उत्साह रखता था, अब जीवित-मृत हूँ। मेरा सुख इतना ही है कि आप जैसे उत्साही बंधु वर्ग खूब लिखें और अपने विचारों से हिंदी जनता की रूचि उन्नत करें, हमारे जैसों के दलित जीवन को बल-बुद्धि दें। मैं आप जैसे नवयुवकों के उत्साह*

---

[173] वही, पृष्ठ-संख्या-51-52

[174] वही, पृष्ठ-संख्या-37

और सामर्थ्य का स्वागत करता हूँ।"[175] द्विवेदी जी इसी पत्र में कमला में लेखन जारी रखने का आग्रह भी मुक्तिबोध से करते हैं।

वीरेंद्र कुमार जैन द्वारा लिखित पत्रों में 'मध्य-भारतीय हिंदी साहित्य समिति' एवं 'वीणा' के खिलाफ आंदोलन का स्वरूप दिखाई देता है। जिसमें सहयोग देने के लिए वह मुक्तिबोध से भी आग्रह करते हैं, दरअसल वह मध्य-भारत-हिंदी साहित्य समिति के प्रभुत्वशाली व्यक्ति एवम् वीणा के संपादक के. पी. दीक्षित को जले भुने स्वार्थियों और प्रतिक्रियावादियों के स्ट्रांग होल्ड के रूप में देखते हैं। मुक्तिबोध को सम्बोधित पत्र 11/02/42 में वह लिखते हैं, कि *"वर्मा जी साहित्य मन्त्री होकर और मैं साहित्य उपसमिति में होकर अगर 'वीणा' में कोई distinct material change ला पाए तभी अपने समझौते की सफ़लता है।"*[176] आगे इसी पत्र में 'वीणा' को इसी माह में अपने होल्ड में कर लेने के प्रयत्न के बारे में बताते हैं। प्रेस में अंक के होने और मैटर की आवश्यकता के बारे में भी बताते हैं। इसी पत्र में डॉ. नारायण विष्णु जोशी 'वीणा' के संपादक से किसी प्रकार का समझौता न कर बैठें, इससे वीरेन्द्र चिन्तित दिखाई पड़ते हैं। वह लिखते हैं कि *"डॉक्टर साहब भूलकर भी संपादक 'वीणा' यानी के. पी. दीक्षित को अनावश्यक महत्त्व देकर अपने प्रान्त के तारुण्य की तकलीफ़ को न बढाएँ। डॉक्टर साहब हमारी बहुत बड़ी धरोहर हैं-वे हमारे नेता हैं- वे ही अगर हमें छोड़ जायेंगे तो प्रान्तीय तारुण्य की solidarity खतरे में पड़ जायेगी। सम्मेलन (म. भा.) के fold में भी वे न चले जाएँ, पूरा ख्याल रखना।"*[177] वह मुक्तिबोध से वस्तुस्थिति की पूरी जाँच कर लेने के लिये भी कहते हैं।

---

175 वही, पृष्ठ-संख्या-68

176 वही, पृष्ठ-संख्या-84

एक अन्य पत्र जो 13/10/59 का है, जिसमें वीरेन्द्र अपने कविता संग्रह 'अनागता की आँखें' पर मुक्तिबोध से समीक्षा का आग्रह करते हैं। वह चाहते हैं, कि श्रीकान्त वर्मा की पत्रिका 'कृति' में उनकी पुस्तक की समीक्षा मुक्तिबोध ही करें। वह लिखते हैं, कि *"सुनो भाई श्रीकान्त वर्मा से मैंने कह दिया है, कि 'कृति' में मेरी पुस्तक की समीक्षा भाई मुक्तिबोध ही करेंगे, और कोई नहीं। यथा सुविधा तुम्हें ही उस पर– अपनी लाक्षणिक मर्म-गम्भीर समीक्षा देनी है। तुम्हारा verdict मुझे सर्वोपरि शीरोधार्य होगा।"*[178] वह उन्हें प्राण-सखा और आत्म-सखा तो मानते ही हैं, साथ ही हिन्दी नव-काव्य के विवेचकों में भी उनकी काव्य मर्मज्ञता सर्वोपरि मानते हैं। इसी के साथ बरसों पहले उनकी पुस्तक 'आत्मपरिणय' पर जो मुक्तिबोध ने लिखा था- उसकी बारीकी, मर्म-गंभीरता, निबिड़ता इत्यादि उन्हें अविकल स्मरण हो आती है।

कलकत्ता से प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका **'विचार'** के संपादक केशव मुक्तिबोध अपने द्वारा लिखे गये पत्र में मुक्तिबोध से **'विचार'** पूजा स्पेशल सितम्बर के अंक के लिये साहित्यिक आलोचनात्मक लेख, कहानी व कविता आदि आवश्यक रूप से भेजने का आग्रह करते हैं। वह अपने 21/01/41 के पत्र में मुक्तिबोध से आज के कॉन्टिनेंटल साहित्य पर या उसके लेखकों पर वैचारिक लेख चाहते हैं। जिसमें मुक्तिबोध के विचार हो, वह उनकी साइकोएनालिसिस करने की संभावना पर भी जोर देते है। जिससे वह लेख हिन्दी वालों के लिये एक नूतन-वस्तु हो सके। कहानी के संदर्भ में वह कोई टिप्पणी नहीं करते हैं, क्योंकि वह जानते हैं, कि मुक्तिबोध कहानी को जीवन की अभिव्यक्ति के लिये और स्वयम् की अभिव्यक्ति के लिये भी बेहतर माध्यम समझते हैं। इसी के साथ वह उनकी march of life जैसी किसी सुन्दर कविता के लिये भी आग्रह करते हैं। एक अन्य पत्र में जो 14/06/41 का है, जिसमें प्रभागचन्द्र शर्मा से केशव मुक्तिबोध को यह विदित होता है कि मुक्तिबोध मनोविश्लेषण बहुत उत्कृष्ट ढंग का करते हैं। वह इसी पत्र में

---

[178]वही, पृष्ठ-संख्या-93

मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *" भाईसाहब से ज्ञात हुआ कि तुम साइकोएनालिसिस बहुत उँची, निष्पक्ष और सुलझी हुई करते हो। क्या मुझे इतना अधिकार है कि "विचार" के लिये तुमसे कुछ उसी प्रकार के निबंध माँगू।"*[179] आगे वह एक अन्य पत्र में हिन्दी में लिख रहे 'कमल जोशी' के कहानी संग्रह **'शीराजी'** पर किसी मासिक पत्र में निष्पक्ष और स्पष्टता के साथ मूल्यांकन करने के लिये भी आग्रह करते हैं।

मुक्तिबोध को सम्बोधित पत्रों में उनकी कहानियों पर कईयों की टिप्पणियां मिलती हैं। यह टिप्पणियां उनके शुरुआती कहानी लेखन की कमियों की ओर इशारा करते हैं, इस संदर्भ में जैनेन्द्र, अज्ञेय और शिवदानसिंह चौहान के पत्र शामिल हैं। जिनमें उनकी कहानियों के पात्र के प्रति उनकी अतटस्थता, उसकी टेकनीक और व्यर्थ की तूल तवील की ओर वह मुक्तिबोध का ध्यान ले जाते हैं। जैनेन्द्र की चर्चा पहले की जा चुकी है, इसलिये इस संदर्भ में शिवदानसिंह चौहान द्वारा 'सरस्वती' प्रेस से लिखे 29/04/41 के पत्र को देखा जा सकता है। जिसमें वह लिखते हैं कि *" आपकी कहानी मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ी थी, यद्यपि अक्षर इतने महीन थे, कि रूक रूककर पढ़नी पड़ी। कहानी अच्छी थी, और उससे आपकी क्षमता का भी मुझे बोध हुआ था। लेकिन कार्याधिक्य के कारण लौटाते समय मैं आपको कुछ लिख न सका। लौटाने का कारण यह था कि कहानी बहुत लम्बी थी, कहीं कहीं व्यर्थ की तूल तवील दी गई थी। आप उस कहानी को आधी से भी कम कर सकते हैं, और साथ में उसकी effectiveness भी बढ़ा सकते हैं।"*[180] इसी पत्र में प्रकाशन के लिये मुक्तिबोध ने 'जगत और जीवन' और 'आधुनिक साहित्य के कुछ अभाव' नामक दो लेख भी भेजे थें। जिसमें आधुनिक साहित्य के अभाव वाले लेख को 'हंस' के लिये स्वीकृत कर, 'जगत और जीवन' वाला लेख यह कहकर अस्वीकृत कर देते हैं, कि उसमें दृष्टिकोण की सफ़ाई नहीं मिलती।

---

[179] वही, पृष्ठ-संख्या-116

[180] वही, पृष्ठ-संख्या-121

मासिक पत्रिका 'प्रदीप' के संपादक जगदीश भारती अपने एक 29/08/41 के पत्र में मुक्तिबोध से उन तक पत्रिका के पहुँचने और उसे अपेक्षाकृत निराशाजनक न होने की बात कहते हैं। आगे वह लिखते हैं, कि *"माचवे जी ने पिछले दिनों आपको एक 'किन्तु' शीर्षक कविता भेजी थी। मैं उसके लिये उनका और आपका दोनों का आभारी हूँ।"*[181] वह इस कविता को पिछले अंक में न दे पाने के प्रति खेद भी प्रकट करते हैं।

प्रदीप कार्यालय में बतौर सहयोगी जगत शंखधर के भी कई पत्र मुक्तिबोध को सम्बोधित मिलते हैं। जिसमें उनकी कविता कहानी और उपन्यास के प्रकाशन की चर्चाएँ शामिल हैं। कविता के सन्दर्भ में उनका 15/08/46 का पत्र देखा जा सकता है। जिसमें वह मुक्तिबोध से उनकी कविता संग्रह के शीर्षक के संदर्भ में सलाह लेते हैं, कि - *"तुम्हारे कविता संग्रह का नाम 'युगारम्भ' रखा जाये तो कैसा हो? संग्रह में पहली ही कविता शीर्षक 'युगारम्भ के छंद' है। तुम्हारा पहला कविता-संग्रह होगा, नये प्रयोग होंगे। यह सब सोच समझकर ही मैंने यह सोचा है।"*[182] वह आगे लिखते हैं, कि अपना मत बताएं। अपने एक अन्य पत्र जो 24/06/46 का है, जिसमें वह कहानी प्रधान मासिक पत्रिका 'साथी' की चर्चा करते हैं। उसमें प्रकाशन के लिये वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"यदि कोई सुन्दर original अथवा अनूदित कहानी भेज सको तो क्या कहना। पैसे दो एक महीने तक कम ही मिलेंगे। यह 'साथी' सितम्बर में प्रकाशित हो जाएगा।"*[183] वह अनुवाद या मौलिक कहानी 15 जुलाई तक भेज देने का आग्रह करते हैं। मुक्तिबोध के उपन्यास लिखने की योजना की चर्चा जगत शंखधर द्वारा सम्बोधित पत्रों में सन् 1945 से ही मिलती है। उनके 03/03/47 के लिखे हुये पत्र में तो उपन्यास के लेखन के जारी होने की स्पष्ट जानकारी मिलती है, जगत लिखते हैं, कि

---

[181] वही, पृष्ठ-संख्या-127

[182] वही, पृष्ठ-संख्या-152

[183] वही, पृष्ठ-संख्या-151-152

"उपन्यास तुमने आगे बढ़ाया है, इसलिये मैं सच ही प्रसन्न हूँ। इसलिये नहीं कि वह मुझे मिलेगा पर इसलिये कि इतनी मुसीबतों में रहते हुये भी तुम कुछ लिख पाये।"[184] वह उन्हें एक-एक चेप्टर भेजने और उसे उसी प्रकार छापने के लिये भी सुझाते हैं, जिससे मुक्तिबोध उत्साहित होकर लेखन कार्य कर सकें।

प्रगतिशील मासिक पत्रिका **'हंस'** के संपादक अमृतराय द्वारा मुक्तिबोध के साथ पत्राचार में ढ़ेरों साहित्यिक गतिविधियां हमें दिखाई पड़ती हैं। मुक्तिबोध द्वारा संपादित 'समता' पत्रिका के विज्ञापन की भी जानकारी मिलती है। उनका 25/08/47 का पत्र इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य है, वह लिखते हैं, कि *" 'समता' वाला परिपत्र मिला था, वही विज्ञप्ति। अगस्त के अंक में गई है। सितम्बर का अंक कल ही छपने को दे रहा हूँ। उसके लिये तुम्हारी रचना अवश्य आनी चाहिए।"*[185] एक अन्य पत्र के हवाले से यह ज्ञात होता है, कि अमृतराय यह जानते हैं कि मध्य-प्रदेश की नई साहित्यिक प्रतिभाओं की रचनात्मकता से मुक्तिबोध परिचित हैं, और उनकी चीजें भी उनके यहां मौजूद हैं। इसलिये प्रकाशन के हेतु मुक्तिबोध के साथ - साथ उनके साथियों की रचनाओं को भी भेजने का आग्रह करते रहते हैं। इस तथ्य की पुष्टि के लिये अमृतराय द्वारा लिखित 10/09/56 का पत्र देखा जा सकता है। जिसमें वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"तुम्हारी भेजी हुई कविताओं में हमने बस दो ली हैं। एक तुम्हारी और एक रामकृष्ण की । रामकृष्ण की एक और अच्छी थी 'आखिर कब तक' लेकिन एक कवि की बस एक कविता लेनी थी, इसलिये 'मेरे शब्द' ले ली।"*[186] मुक्तिबोध द्वारा कुछ लोगों की कविताएं और भेजी गई थी। अमृतराय द्वारा उनकी कविताओं को अस्वीकृत किये जाने के कारणों को संक्षेप में उल्लिखित करते हैं। प्रमोदकुमार की कविता के बारे में वह कहते हैं, कि कुछ टुकड़े अच्छे हुये हैं, लेकिन पूरी लम्बी कविता को कवि संभाल नहीं सका

---

[184] वही, पृष्ठ-संख्या-156

[185] वही, पृष्ठ-संख्या-135

[186] वही, पृष्ठ-संख्या-140

है। अनिल कुमार की कविताओं के संदर्भ में कहते हैं, कि एक्स्प्रेशन की वॉयलेन्स तो बहुत है, पर सच्चा काव्य गुण कम है। अमृतराय को श्रीकान्त की इस बार की कविताओं से निराशा ही हुई, निराशा इसलिये क्योंकि उनकी कविताएं अक्सर अमृत को अच्छी लगती रही हैं। पिछले हफ़्ते ही अभी श्रीकान्त की एक लम्बी कविता पढ़े जाने और उसका मन पर अच्छा संस्कार होने की बात वे करते हैं, और कहते हैं, कि कहीं ऐसा तो नहीं है, कि कविताओं का चयन करते समय तुम्हारी दृष्टि विशेष रूप से मिलिटेन्ट चीजें संग्रह करके भेजने भर रही हो? वह कहते हैं, कि इन कविताओं को पढ़कर मुझे ऐसा ही आभास हुआ। वह अनुरोध करते हैं, कि अगर इसमें सत्यांश भी हो तो आगे से ध्यान देना, सच्ची कविता के तलाश में रहना, मिलिटेन्सी या तथाकथित 'प्रगतिशीलता' की चिन्ता मत करना। वह श्रीकान्त वर्मा की और कोई चीज भी प्रकाशन के लिए भेजने का आग्रह करते हैं।

तार सप्तक के पुनर्मुद्रण के सन्दर्भ में भारतभूषण अग्रवाल के पत्र प्राप्त होते हैं। जिसमें वह 'प्रतीक' पत्रिका और प्रकाशन कार्य में बतौर सहयोगी के रूप में शामिल होते हैं। पुस्तक विभाग अपने जिम्मे होने की बात कहते हुये वह अपने 01/05/47 के पत्र में मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"यह निश्चित हुआ है कि 'तार सप्तक' का पुनर्मुद्रण किया जाय। इस मास के अंत तक उसे बाज़ार में लाना चाहते हैं। छपने में लगभग 15 दिन लगेंगे। इसके पहले उसके प्रत्येक कवि से चाहते हैं, कि वह अपनी रचनाओं में कुछ जोड़ना-घटाना चाहे तो अपने सुझाव भेज दें। मैं चाहता हूँ कि तुम दो तीन कविताएँ तो नई भेजो ही, यदि कोई निकालना चाहो तो उसका भी संकेत दो।"*[187] एक अन्य पत्र में मुक्तिबोध के गीत कविताओं की रेडियो में कॉन्ट्रैक्ट कर लेने की बात भारतभूषण करते हैं। अपने 18/03/48 के पत्र में वह लिखते हैं, कि *"यदि दस-बीस गीत कविताएँ भेज दो तो contract हो जायेगा। इससे आय तो विशेष नहीं होगी, पर भविष्य के लिये एक सीढ़ी*

[187] वही, पृष्ठ-संख्या-162

अवश्य बनेगी।"[188] मुक्तिबोध की आर्थिक मजबूरियों को कुछ सम्बल मिल सके इसलिये वह लखनऊ आने पर और रास्ते निकल सकने की सम्भावना को भी व्यक्त करते हैं।

मुक्तिबोध का सम्बन्ध **'नया सहित्य'** के संपादक राजीव सक्सेना से भी रहा है। उनके द्वारा लिखे पत्रों में मुक्तिबोध से आलोचनात्मक लेख और कविताएं भेजने का आग्रह भी मिलता है। इस संदर्भ में सक्सेनाजी का 10/03/47 का पत्र देखा जा सकता है, वह लिखते हैं, कि *"आपने प्रसादजी के विषय में एक लेख भेजने का वायदा किया था, लेकिन अभी तक हमें मिला नहीं। भाई, लिखो कब तक भेज रहे हो। आगामी अंक से 'नया साहित्य' को मासिक बना रहे हैं।"*[189] वह अगला पत्र 17/03/47 को लिखते हैं, जिसमें लेख के न पहुँच पाने की ओर इशारा करते हुये लौटती डाक से भेजने का आग्रह करते हैं। साथ ही अपनी विवशता भी जाहिर करते हैं, क्योंकि 27 मार्च तक मैटर प्रेस में देना है। इसी पत्र में वह अगले अंक के लिये कविताएं भी मिलनी चाहिये, ऐसा आग्रह करते हैं।

दूसरे सप्तक के कवि हरिनारायण व्यास के पत्र से यह ज्ञात होता है, कि सन् सैंतालिस के आस पास मुक्तिबोध ने कभी कहा होगा, कि वह मराठी में कविता लिखकर हिन्दी के साथ ज्यादती नहीं करना चाहते। जिसकी प्रतिक्रिया में हरिनारायण अपने 17/11/47 के पत्र में लिखते हैं, कि *"आपने लिखा कि आप कविता लिखकर हिन्दी के साथ ज्यादती नहीं करेंगे। हिन्दी कविता का किसी महापुरूष ने ठेका तो ले नहीं रखा है? वह हमारी भाषा है हम उसे सजा सकते हैं, उसे सँवार सकते हैं, हमें रोकने वाला कौन है। जनाब, इस ज्यादती के चक्कर में न पड़िए। लिखिये शौक से और जोर से।"*[190] वह आगे कहते हैं, कि आप अपने प्रकाश को कब तक दबाते रहेंगे? हम लोग लेखन कर्म किसी स्वार्थ के लिये तो नहीं करते बल्कि इसलिये

---

[188] वही, पृष्ठ-संख्या-163

[189] वही, पृष्ठ-संख्या-167

[190] वही, पृष्ठ-संख्या-177

करते हैं, कि हमें अपनी जनता को एक निश्चित ध्येय तक पहुँचाना है। दरअसल हरिनारायण मराठी साहित्यिक पत्रिका **'अभिरूचि'** में साहित्य को जीवन और राजनीति से अछूता पाकर देश की वर्तमान दुर्दशा को लेकर और साम्प्रदायिक एकता को लेकर मराठी साहित्य में कुछ न लिखे जाने या उसका साहित्यिक विधाओं में आभास तक न मिलने के प्रति चिन्ता प्रकट करते हैं। जिसके कारण वह मुक्तिबोध से लिखने का आग्रह करते हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त द्वारा लिखे गये पत्रों में मुक्तिबोध से **'नई दिशा'** पत्रिका के संदर्भ में बात चीत मिलती है। इस पत्रिका को मुक्तिबोध के स्नेहिल श्रीकान्त वर्मा और प्रमोद वर्मा ने विलासपुर से निकाला था। जिसके बारे में गुप्त जी अपने 09/07/55 के पत्र में लिखते हैं, कि *''नई दिशा' नई पीढ़ी के स्वर के रूप में प्रशंसनीय प्रयास है, मैं इसे शुभ लक्षण समझता हूँ कि नई पीढ़ी अपने दृढ़ हाथों में साहित्य का बागडोर ले रही है। आपको तो मैं नई पीढ़ी नहीं समझता, किन्तु आपको उसका विश्वास प्राप्त है, तो यह अत्यन्त गौरव की बात है।''*[191] इसी पत्र में आगे वह उनके तुलसी पर लिखे लेख से भी बहुत कुछ सहमत होते हैं। उन्हें मुक्तिबोध की कविताओं के भी कुछ अंश अच्छे लगते हैं। एक अन्य पत्र जो 21/10/55 का है, जिसमें 'नई दिशा' के दूसरे अंक प्राप्त होने की और उसके पिछले अंक से; अब चाहे वो पत्रिका के रूप सज्जा की बात हो या अधिक महत्वपूर्ण रचना की बात हो या अधिक लेखकों को प्रकाश में लाने की ही बात हो, हर मानी से बेहतर होने की बात गुप्तजी ने मुक्तिबोध से कही है। वह उनसे आशा करते हैं, कि किसी भी प्रकार से वह इस पत्रिका को जीवित रखेंगे।

रणधीर सिन्हा द्वारा लिखे गये पत्र में भी मुक्तिबोध से 'विविधा' नामक पत्रिका में प्रकाशन हेतु आलोचनात्मक लेख और कवितायें मांगने का आग्रह मिलता है, इस संदर्भ में उनके अलग अलग समय में लिखे पत्रों को देखा जा सकता है, उदाहरण के तौर पर 20/01/51 को लिखे गये पत्र को देखा जा सकता

---

[191] वही, पृष्ठ-संख्या-183

है। जिसमें वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *" विविधा (दो) की प्रति मिली होगी। 'नया खून' के पते से रजिस्टर्ड भेजी गई थी। अपने विचार देंगे। हम यहां से रचनात्मक गद्य और आलोचनात्मक गद्य के दो और संकलन निकाल रहे हैं।"*[192] जिसके लिये वह नई कविता की भूमिका के लिये प्रगतिवाद पर एक लेख, रचनात्मक गद्य की कोई अन्य रचना साथ ही कविताओं के लिये भी आग्रह करते हैं। एक अन्य पत्र जो 18/10/54 का है, उसमें भी सिन्हाजी मुक्तिबोध से '**प्रगतिवाद और उसका परवर्ती प्रभाव**' विषय पर लेखन का आग्रह करते हैं।

नरेश मेहता द्वारा मुक्तिबोध को संबोधित पत्रों में भी साहित्यिक गतिविधियों की हमें भरमार मिलती है। किसी भी मसले पर वह उनसे राय लेने, उन्हें सलाह देने में नहीं चुकते हैं। **'साहित्यकार'** और **'कृति'** जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ वह रचनायें भेजने का आग्रह करते ही रहें हैं। **'नई कविता'** नामक पत्रिका के प्रतिक्रियावादियों के खेमें में रहने वाले जगदीश गुप्त के बारे में वह मुक्तिबोध को अपने 01/02/54 के पत्र में लिखते हैं, कि *" 'नई कविता' वालों का पत्र भी मेरे पास आया था और आज उत्तर मैंने 'हां' में दिया है। मैं समझता हूँ कि आपको भी निश्चय ही भेजनी चाहिए। इसका प्रमुख कारण है- जगदीश गुप्त। वे महाशय भी वैसे ही हैं तो उसी थैली के चट्टे-बट्टे पर वैयक्तिक रूप से उतने बुरे नहीं हैं- यही कहा जाए तो अच्छा है कि आज की राजनीति से वह दूर हैं। जिन 'भारती' वादी के साथ हैं उसमें उन लोगों का सहपाठी होना अधिक कारण हैं।"*[193] इसीलिये वह मुक्तिबोध को सलाह देते हैं, कि यदि आप अपनी वे छोटी-छोटी कविताएँ भेजें तो ज्यादा अच्छा ही होगा।

---

[192] वही, पृष्ठ-संख्या-188

[193] वही, पृष्ठ-संख्या-196

एक अन्य पत्र जो 08/04/54 का है, जिसमें नरेशजी द्विमासिक पत्रिका 'साहित्यकार' की योजना और उसके उद्देश्यों के बारे में मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *" पिछले दिनों यहाँ के कई नये लेखकों से भेंट हुई और पाया कि उनका असंतोष पुरानी पीढ़ी, वात्स्यायनवाद, भयंकर साम्यवादी सबसे है, और वे अनुभव करते हैं, कि बम्बई के 'नया साहित्य' या प्रतीक या लन्दन से नव प्रकाशित जॉन लोपेन का 'लन्दन मैगजीन' जैसा पत्र होना अति आवश्यक है।"*[194] वह इस मुद्दे पर कई लेखकों से मीटिंगों में और व्यक्तिगत रूप से बात चीत करके इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि यदि बांग्ला के **'परिचय'** पत्र की भाँति ही अगर हिन्दी में कोई ऐसा पत्र चलाया जाए तो संभव है, कि 'हंस' या प्रयाग वाले 'नया साहित्य' या 'नया पथ' की सी संकीर्ण और कलात्मक वामपक्षीयता न दुहरे और आधुनिक नवलेखकों को आपस में मिल जुलकर नए पथ के क्षितिज दिखाई पड़ जाए। आगे इसी पत्र में प्रकाशनार्थ अधिकारपूर्वक वह दो कविताएं और साहित्य या कला सम्बन्धी किसी एक समस्या पर लेख भेजने का भी आग्रह करते हैं। अपने 26/07/58 के पत्र में भी नरेश मुक्तिबोध को 'कृति' पत्रिका और उसकी योजना के बारे में बताते हैं। यहां भी वह पत्र के अन्यों से भिन्न होने की बात कहते हैं, और इस परिपत्र के स्तम्भ कवि शमशेर को केंद्रित करके कलाकार की उँचाई और व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में मुक्तिबोध से लेखन का आग्रह तो करते ही हैं, साथ ही इस संदर्भ में नामवरजी और श्री कुंवर नारायणजी से भी लेखन के लिये आग्रह किये जाने की उन्हें सूचना देते हैं। आगे इसी पत्र में अगले विशिष्ट कवि के रूप में श्री मुक्तिबोध होंगे, इस बात को भी वह विदित करा देते हैं।

'वसुधा' के संपादक रहे हरिशंकर परिसाई द्वारा मुक्तिबोध को सम्बोधित पत्रों में भी उनकी रचनात्मकता से जुड़ी कई चर्चाएं शामिल हैं। यह तो सर्वविदित रहा है, कि मुक्तिबोध की डायरी का प्रकाशन 'वसुधा' में प्रमुखता से होता रहा है। जिसके संदर्भ में कई टिप्पणियों पर दृष्टिपात परसाईजी के पत्रों के बहाने किया जा सकता है। जबलपुर से लिखे 08/04/57 के पत्र में वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि " *'डायरी'*

---

[194] वही, पृष्ठ-संख्या-197

के सम्बन्ध में मैंने कुछ लोगों से चर्चा की विशेषकर प्रमोद और हनुमान वर्मा से। उन लोगों का खयाल है कि डायरी खूब जमी और आप इसी प्रकार चीजों को उठाकर उन पर विचार करते जाएं, तो बहुत सी बातें साफ़ होंगी। मेरा निश्चित मत है, कि यह आयोजन बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। शैली आपने बहुत उत्तम चुनी है। साहित्यिक प्रश्नों पर इसी प्रकार जीवन्त शैली में विचार होना चाहिये। इस किस्त से नई कविता के खेमों के सम्बन्ध में उनकी मान्यताओं और आन्तरिक प्रवृत्तियों के बारे में आपका दृष्टिकोण स्पष्ट होता है।"[195] एक अन्य पत्र में जो 11/09/57 का है। जिसमें परसाईजी मुक्तिबोध के 'वसुधा' में डायरी प्रकाशन को बड़ी उपलब्धि मानते हैं, वह लिखते हैं कि *" आपकी डायरी के प्रशंसकों के पत्र आते ही रहते हैं। यह लिखकर रस्म अदा नहीं कर रहा हूँ। ऐसा लिखा पढ़ने की आपको अपेक्षा भी नहीं है। पर यह वसुधा की बड़ी उपलब्धि है। आपका इतने समय का गहरा अध्ययन-चिन्तन इस माध्यम से प्रकट हो रहा है यह मेरे लिये गौरव की बात है।"*[196] इसके अतिरिक्त मुक्तिबोध की पुस्तक 'कामायनी: एक पुनर्विचार' के प्रकाशन की बात-चीत, उसके कन्ट्रोवर्सियल होने की बात-चीत भी परसाईजी द्वारा सम्बोधित पत्रों में देखा जा सकता है। अपने 31/07/61 के पत्र में तो मुक्तिबोध को परसाई लिखते हैं, कि *"इस पुस्तक का आना अच्छा हुआ। 'प्रसाद' पर काफ़ी stale समीक्षा चल रही थी; इससे जरा लोग चौकेंगे और विचार करेंगे। प्रसाद की समीक्षा में यह बड़ा महत्वपूर्ण contribution हुआ। आचार्यों को धक्का लगेगा-लगना भी चाहिये।"*[197] इससे आगे बढ़कर वह चाहते हैं, कि अगर इस पुस्तक का खंडन करने के लिये आचार्यों द्वारा लेखन कार्य हो तो यह और शुभ होगा। इस तरह की ढ़ेरों चर्चाएं परसाईजी के पत्रों में स्थान पाती हैं।

'कृति' नामक मासिक पत्रिका में बतौर सहयोगी संपादक श्रीकान्त वर्मा के द्वारा मुक्तिबोध को सम्बोधित पत्रों में साहित्यिक गतिविधियों की चर्चाएं अधिक मात्रा में मिलती है। मुक्तिबोध स्वयम् 'कृति'

---

[195] वही, पृष्ठ-संख्या-223

[196] वही, पृष्ठ-संख्या-224

[197] वही, पृष्ठ-संख्या-235

को अपना पत्र मानते रहे हैं। संभवत: इसीलिये उनकी दिलचस्पी भी इस पत्र में ज्यादा रही है, और उनका महत्वपूर्ण योगदान भी, इस तथ्य की पुष्टि श्रीकान्त द्वारा मुक्तिबोध को संबोधित एक पत्र से होती है। जो 23/05/60 को लिखा गया जिसमें वह लिखते हैं, कि *''गत कुछ महीनों, आपने 'कृति' में आत्मीय दिलचस्पी ली इसका आभार व्यक्त करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं है। 'कृति' को इससे कितना लाभ हुआ है, इसका प्रमाण लेखकों और पाठकों के बीच, 'कृति' की बढ़ती हुई लोक-प्रियता है। साहित्य में मिशनरी की भावना से कार्य करने वाले लोग, एक युग में शायद आठ या दस ही होते हैं। आप इतने वर्षों से जिस मिशन को लेकर जूझ रहे हैं, उसमें योग देने वाले, चाहे इने गिने लोग ही हों, पर यह संघर्ष समूची मनुष्यता का है। 'कृति' इसी मिशन की छोटी सी अभिव्यक्ति है, यानी आपकी ही अभिव्यक्ति है। अत: यह स्वाभाविक है और आवश्यक है कि आप उसमें नियमित रूप से लिखें और आगे बढ़ाएँ।''*[198] इसी पत्र में आगे वह 'कृति' के अगले अंक की योजना के बारे में स्पष्ट करते हुये लिखते हैं, कि अगला अंक सुमित्रानन्दन पन्त अंक के रूप में प्रस्तावित है, और किसी भी प्रकार से यह स्तुति का प्रयास नहीं होगा। साथ ही पंतजी के माध्यम से यह एक प्रकार से छायावाद का पुनर्मूल्यांकन ही होगा, जो आज संभवत: अतीव आवश्यक हो उठा है। इसी अंक के लिये श्रीकान्त मुक्तिबोध से पन्त काव्य या छायावाद के सांस्कृतिक पक्ष पर निबन्ध लिखने का आग्रह करते हैं।

एक अन्य पत्र जो 04/08/60 का है, जिसमें 'कृति' में प्रकाशित विनोद कुमार शुल्क की कविताएं पसन्द की गई, इसकी जानकारी मिलती है। जिन्हें मुक्तिबोध ने ही प्रस्तावित किया था। पत्र में वह लिखते हैं, कि *''नए अंक में श्री विनोद कुमार शुक्ल की कविताएं पसंद की गई। आपने एक अच्छा कवि इन्ट्रोड्यूस किया है। मैंने उन्हें और भी कविताओं के लिये लिखा है।''*[199] वह उन्हें अपनी ओर जब भी और जहां भी

---

[198] वही, पृष्ठ-संख्या-255

[199] वही, पृष्ठ-संख्या-257

ऐसी कविताएँ मिलें, उन्हें भेजने का आग्रह करते हैं और कहते हैं, कि इससे कृति को बल ही मिलेगा। इसके अतिरिक्त साहित्यिक गतिविधियों के बात-चीत के संदर्भ में 11/05/61 का पत्र ध्यान देने योग्य है। इसी पत्र में नरेश मेहता के 'कृति' से अलग होने और 'कृति' के प्रकाशन के सिलसिले में मुसीबत खड़े होने की चर्चा शामिल है, बहरहाल श्रीकान्त उन्हें लिखते हैं, कि *"आपने समय समय पर हम लोगों की बड़ी सहायता की है। मैं चाहता हूँ, कि अब आप 'कृति' में फिर नए उत्साह से दिलचस्पी लें। चाहता तो मैं यह हूँ कि आप उसमें कोई स्तंभ लिखें। पर यदि संभव न हो, तो आप कम से कम तीन महीनों में एक बार 'कृति' में लेख अवश्य लिखें।"*[200] आगे इसी पत्र में वह मुक्तिबोध से 'लेखक और राजनीति' विषय पर एक लेखमाला शुरू करने का आग्रह करते हैं। इस आग्रह के पीछे की चिंता को प्रकट करते हुये वह कहते हैं, कि आप जानते ही हैं, कि राजनीति से एलियनेट होने की प्रक्रिया में लेखक धीरे - धीरे समूचे समाज की वास्तविकता से ही कट गया, इसलिये इस ओर सबसे ठीक - ठीक अन्यों का ध्यान आप ही आकृष्ट कर सकते हैं।

मुक्तिबोध को संबोधित नामवर सिंह के भी पत्र हमें प्राप्त होते हैं। जिनमें मुक्तिबोध की 'कामायनी: एक पुनर्विचार' पुस्तक प्राप्त होने की जानकारी मिलती है। अपने 01/08/61 के पत्र में वह मुक्तिबोध को पुस्तक के बारे में लिखते हैं, कि *"अधिकांश पढ़ गया लेकिन दो-एक मेहमान आ गये इसलिए अभी पुस्तक खत्म नहीं कर सका। आपने इतनी नई बातें कही हैं, कि एक विस्तृत समीक्षा की अपेक्षा है और शीघ्र ही इसकी रिव्यू लिखने जा रहा हूँ। अभी यह निश्चय नहीं किया है, कि किस पत्रिका में भेजूं। अन्तत: आपकी यह चिरप्रतीक्षित पुस्तक प्रकाशित देखकर बेहद खुशी हुई।"*[201] आगे इसी पत्र में पुस्तक पढ़ते वक्त जो बात उन्हें खटकी कि 'मार्क्सवादी जार्गन' से कहीं सामान्य पाठक भड़क न जाए। वह अपनी राय प्रकट करते

[200] वही, पृष्ठ-संख्या-260

[201] वही, पृष्ठ-संख्या-285

हैं, कि हम लोगों को वर्तमान स्थिति में इस जार्गन से बचना चाहिए। साथ ही इसी पत्र में वह वसुधा में प्रकाशित डायरी के प्रकाश में आ जाने पर भी जोर देते हैं।

और अंत में साहित्यिक गतिविधियों में 'कल्पना' पत्रिका और उसके संपादकों की चर्चा भी अपेक्षित है, क्योंकि 'कल्पना' ही वह पत्रिका है, जिसमें मुक्तिबोध की बहुचर्चित कविता **'अंधेरे में'** उस समय **'आशंका के दीप : अंधेरे में'** शीर्षक से छपी थी। यह तो सर्वविदित ही है, कि यह कविता 'कल्पना' में प्रकाशित हुई थी। लेकिन उसके पहले भी बद्रीविशाल पित्ती के पत्रों में साहित्यिक गतिविधियां हमें प्राप्त होती हैं। इस संदर्भ में 28/11/61 का पत्र ध्यान देने योग्य है। जिसमें वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"आपने जो तीन कवितायें भेजी थीं, वे मिल गई हैं, जिनकी पहुँच मैंने अपने 18 नवम्बर के पत्र में भेज दी थी। उनमें से 'एक स्वप्न कथा' और 'पता नहीं' शीर्षक कविताएँ हम स्वीकार कर सके। 'मेरे युवजन मेरे परिजन', हमें खेद है, कि हम स्वीकार नहीं कर सके। अस्वीकृत कविता इसके साथ वापस भेज रहा हूँ।"*[202] इसी पत्र में निराला पर कल्पना के लिए मुक्तिबोध लेख लिखना पसंद करेंगे? इस संदर्भ में बद्रिविशाल पित्ती उनकी प्रतिक्रिया जानना चाहते हैं। एक अन्य पत्र है, 01/11/63 का जिससे ज्ञात होता है, कि मुक्तिबोध ने प्रकाशन के लिए **'मेरा भाग्य'** शीर्षक से कहानी भेजी थी। जिसके बारे में बद्रिविशाल लिखते हैं, कि *"यह है आपकी कहानी 'मेरा भाग्य' के सम्बन्ध में जिसका शीर्षक हमने 'पक्षी और दीमक' कर दिया है। मुझे आशा है, इसमें आपको किसी प्रकार की आपत्ति न होगी, और यदि हो तो कृपया तुरन्त सूचित कीजिए, क्योंकि वह दिसम्बर अंक में प्रकाशित हो रही है।"*[203]

अंत में यही कहा जा सकता है कि यह साहित्यिक गतिविधियां मुक्तिबोध की रचनात्मक यात्रा के महत्वपूर्ण संवाद के रूप में प्रकट होती है। जिससे रचना के प्रकाशन और उसकी जरूरतों को रेखांकित

---

[202] वही, पृष्ठ-संख्या-323

[203] वही, पृष्ठ-संख्या-327

किया जा सकता है, साथ ही प्रकाशित कृति पर होने वाली चर्चाएँ शामिल है। जो किसी लेखक, कवि की रचनात्मक यात्रा की तरह स्वीकार किया जाना चाहिए।

3.4-साहित्यिक वैचारिक संवाद

विचार और चिंतन मनुष्य के जागृत होने के चिन्ह हैं। हिन्दी साहित्य में अपनी प्रखर वैचारिक चेतना के लिए जाने जाने वाले मुक्तिबोध एक चिन्तनशील व्यक्ति रहे हैं। उन्हें बहस करना बहुत ही पसंद रहा है, वाद-विवाद की इस यात्रा से गुजरकर ही उन्होंने स्वयम् को वैचारिक रूप से निरन्तर विकसित किया। जिसके

प्रमाण रूप में हम उनके रचनात्मक गद्य और पद्य पर विहंगम दृष्टि डाल सकते हैं, इस यात्रा में उनके द्वारा लिखे गये पत्रों में साहित्यिक विचार-विमर्श का आना बहुत ही स्वाभाविक है। यहां यह ध्यान देना जरूरी है, कि मुक्तिबोध साहित्य को राजनीति से अलग देखने के पक्षपाती नहीं रहे हैं, बल्कि उसे उसका अभिन्न हिस्सा मानते रहे हैं। उनके लिये साहित्य के प्रश्न मूलत: जीवन के प्रश्न हैं और राजनीति जीवन को किस तरह प्रभावित करती रही है, वह इसे बखूबी जानते थे। इसलिये साहित्यिक विचार-विमर्श में एक खास तरह की जीवन दृष्टि जैसे हमें उनकी रचनात्मकता में प्राप्त होती है, ठीक वैसे ही उनके पत्र भी उनसे अछूते नहीं रहे हैं। जिन मित्रों, साथियों से पत्राचार के जरिये मुक्तिबोध की बहसे, प्रतिक्रियायें, चिन्तन, वैचारिक पक्षधरता, निवेदन इत्यादि मसले रहें हैं, ठीक इसके विपरित उन साथियों, मित्रों के भी पत्राचार के ही माध्यम से मुक्तिबोध के साथ साहित्यिक मुद्दे पर उनकी बहसे, प्रतिक्रियायें, चिंतन, वैचारिक पक्षधरता साथ ही उनके निवेदन आग्रह भी रहे हैं। जिन पर दृष्टिपात उन मित्रों के पत्राचारों के बहाने ही आगे किया जा सकेगा।

जिसकी शुरुआत यहां अज्ञेय द्वारा लिखे पत्र के माध्यम से किया जा रहा है। मुक्तिबोध अपनी किसी कहानी के संदर्भ में अज्ञेय की सम्मति जानने के इच्छुक रहे हैं। यह अज्ञेय द्वारा लिखित 07/07/42 के पत्र में उनकी टिप्पणियों से ज्ञात होता है। वह लिखते हैं कि *"आपकी कहानी की बात सम्मति क्या देता? कहानी मुझे अच्छी लगी। कुछ खटका तो वह उसकी आत्मा से नहीं, उसके टैक्निक और उसकी भाषा से सम्बद्ध रखता था। आपके लिये हिन्दी अभी तक स्पष्टतया एक परकीय माध्यम है। यह आप स्वयम् अनुभव करते होंगे। इसका इलाज है, अधिक अभ्यास और हिन्दी मराठी प्रयोगों का तुलनात्मक अध्ययन। इसी से आप Conscious हो सकेंगे।"*[204] इसी के साथ वह यह भी स्पष्ट करते हैं कि इसका यह अभिप्राय नहीं कि हिन्दी को बाहर से कुछ नहीं लेना चाहिये – पर आयात ऐसा हो कि खप सके। उन्होंने उनकी भाषा को जरूरत से

[204] संपादक - मुक्तिबोध, रमेश गजानन, वाजपेयी,अशोक, मेरे युवजन मेरे परिजन (ग.मा.मुक्तिबोध के नाम पत्र) राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण: 2007, पृष्ठ-संख्या-42-43

ज्यादा नर्वस कहा और उसके कारण को बताते हुये कहा कि आप अपनी अभिव्यक्ति के लिये तेजी से सोचते हैं, यह गुण भी है और नहीं भी है, *" नहीं इसलिये, कि fast thinking की तीव्रता का एक कारण यह भी होता है, कि वहां emotion laden होता है। अपनी विचार परम्परा को थोड़ा objectivise कीजिए, वह अपने आप अधिक संयत हो जायेगी और आपके एक्सप्रेशन की पकड़ में आ जाएगी।"*[205] अपनी बात को और स्पष्ट करते हुये वह कहते हैं कि तीव्र चिंतन में असल में होता यह है, कि विचार तन्तु जितने जल्दी जुड़ते हैं, उससे कहीं अधिक तीव्रता से भाव-तन्तु जुड़ते चलते हैं, जिसके कारण मुक्तिबोध की भाषा पर दोहरा बोझ हो जाता है, और वह लड़खड़ा जाती है, इसीलिये अज्ञेय ने उनकी भाषा को नर्वस कहा। अपनी प्रतिक्रिया देने के बाद इसी पत्र में वह यह कहना नहीं भूलते कि आप मेरी बातों को उतना महत्व देंगे जितना सद्भावनापूर्ण परामर्श को देना चाहिये- न कम न अधिक।

वीरेन्द्र कुमार जैन के पत्राचारों में विचार-विमर्श के साथ-साथ मुक्तिबोध से उनके वैचारिक संघर्ष की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। मुक्तिबोध के ट्रेजडी को प्यार करने को वह गलत मानते हैं। वह ट्रेजडी को बेबस होकर प्यार करने की उस मूल स्थिति को विश्लेषित करते हुये स्पष्ट करते हैं, अपने 17/09/39 के पत्र में वह मुक्तिबोध को लिखते हैं कि *"tragedy को प्यार करने का शगल तो गलत चक्कर है। वह आदमी की impotency है। वह जीवन-शक्ति और कर्म-शक्ति (life-force and action force) के अभाव के कारण है। नियति की धारणा समझ में आती है, कर्म दर्शन मैं मान सकता हूँ, मानवीय कर्म-शक्ति पर हावी रहने वाली बाह्य circumstancial या nature forces की भी मैं अवज्ञा नहीं करता। पर इन उपकरणों के सत्ता होने मात्र से, मानवीय कर्म-शक्ति को passively surrender करना होगा - यह मैं मानने को तैयार नहीं। यह तो बुजदिल नपुंसक भाग्यवाद है। विशुद्ध मानव-आत्मा से बड़ी शक्ति सृष्टि में दूसरी नहीं – सारी बाह्य शक्तियों पर हम पर होने वाला oppression केवल इसलिये है, कि हमारी सम्पूर्ण आत्म-शक्ति*

---

[205]वही-पृष्ठ संख्या-43

चैतन्यमय और जागृत नहीं है, हम जितने ही अधिक दुखी और oppressed हैं, उसी अनुपात में हमारा सच्चिदानन्दमय, परमानन्दरूप चैतन्य जड़ावरणों से आच्छादित है।''[206] वह इस जड़ावरण को विविध भौतिक इच्छाकांक्षाओं का घनीभूत पिंड कहते हैं। जो हमारी सर्वश्रेष्ठ इच्छा शक्ति को दबाए रहती है, जिसके परिणाम स्वरूप हम अशक्त हो उठते हैं। इसी को कहते हैं ट्रेजडी में शामिल होना, ट्रेजडी को बेबस होकर प्यार करने लगना। वह इनके निदान के लिये जड़ावरणों के चट्टान को तोड़ने की बात करते हैं। इसी के साथ विचार के क्षेत्र में मुक्तिबोध की पक्षधरता के विरूद्ध उनके चिन्तन को सिन्थेटिक बनाने, ऐक्य साधन व मत सामंजस्य के लिये वीरेन्द्रकुमार का निवेदन भी द्रष्टव्य है - इसी पत्र में वह लिखते हैं, कि *''जीवन के विभिन्न व्यक्तित्वों (selves) और उनके द्वारा बने हुये universes को एक सूत्र में बाँधना और harmonize करना होगा। ज्ञान की दिशा में यह साधन करने के लिये अपने चिन्तन को synthetic बनाना होगा। निरा विश्लेषण या पृथक्करण या वैविध्य दर्शन ही हमारा साध्य नहीं है-ये तो साधन उपकरण हैं। इसके द्वारा ऐक्य साधन और समीकरण की ओर जाना है। मेरे भैया मुझे क्षमा करना यदि एक बात कहूँ, तुम ऐक्य साधन और मत सामंजस्य से विपरित मतभेद, वैषम्य-वैविध्य दर्शन को ही अपना लक्ष्य अभीष्ट मान बैठे हो-तुम्हें मतभेद का और स्वतंत्र मत-धारणा या विचार स्थापना का एक mania सा हो गया है-तुम उस ओर बहुत आकृष्ट हो।''*[207]

एक अन्य पत्र जो दिनांक 03/04/60 का है, जिसमें मुक्तिबोध की एक कविता पर उनकी टिप्पणी मिलती है, वह लिखते हैं कि *''मार्च की 'कृति' में 'अन्त:करण का आयतन' नामक तुम्हारी लम्बी कविता पढ़ने के बाद, इधर तुम भीतर-भीतर बराबर मेरे साथ रहे हो। इतने सूक्ष्म भाव-जगत का आविष्कार, ऐसी*

---

[206] वही-पृष्ठ संख्या-71

[207] वही-पृष्ठ संख्या-72

दूरगामी almost अगम संवेदन जगतियों का अनावरण-तुम्हें छोड़कर-हिन्दी नव-काव्य में शायद किसी ने नहीं किया। आगामी दिनों के समीक्षक तुम्हारी कृतियों पर पुस्तकें लिखकर अपने को कृतार्थ अनुभव करेंगे।''[208] वह आगे कहते है कि तुम्हारी कविता में अनागत युग के नवीनतम भाव-लोकों का उपोद्घात हो रहा है। युगान्तरगामी महाकवि की काल भेदी-शब्द शक्ति से तुम्हारा काव्य भास्कर है। अपने इस महाकवि की प्रतिष्ठा को भी मुक्तिबोध अपने जीवन में देख सकें, उसके लिये वीरेन्द्र उनके चिरआयु होने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

कलकत्ता से प्रकाशित 'THE VICHAR' साप्ताहिक पत्रिका के संपादक केशव मुक्तिबोध अपनी वैचारिक पक्षधरता को मुक्तिबोध के सामने स्पष्ट करते हैं। वह अपने 21/01/41 के पत्र में लिखते हैं कि *'' मुझे खुशी है, कि मेरी तरह एक भाई मुझे और मिला। मैं तो आज सारी सोसाइटी में ही आमूल परिवर्तन चाहता हूँ। मैं उस आदर्शवाद या आदर्शवादी को पसंद नहीं करता जो यह कहता है, कि अतीत में जो कुछ सर्वश्रेष्ठ है, जो कुछ सर्वकल्याणकारी है, उसे लेकर वर्तमान के साथ जोड़ एक स्निग्ध भविष्य की मूर्ति गढ़नी चाहिये।''*[209] आगे वह कहते हैं, कि वह ऐसे आदमी को बिल्कुल अमनोवैज्ञानिक और मूर्ख समझते हैं, क्योंकि ऐसे लोग विज्ञान से घबराते हैं, मशीन से घबराते हैं, युद्ध से घबराते हैं। अपनी इस विचारधारा को जाहिर कर वह अनुमान लगाते हैं, कि वह नहीं समझते कि मुक्तिबोध उनकी इस विचारधारा को पसन्द करेंगे या नहीं। लेकिन जहां तक उनके भाईसाहब (प्रभाग भैया) ने उन्हें बताया है, वहां तक वह गुमान करते हैं, कि मुक्तिबोध उनकी प्रशंसा करेंगे ।

---

[208] वही-पृष्ठ संख्या-95

[209] वही-पृष्ठ संख्या-115

उनके एक अन्य मित्र जो मासिक पत्रिका 'प्रदीप' के संपादक रहे जगदीश भारती! उनके पत्र की प्रतिक्रिया के बहाने यह स्पष्ट होता है, कि मुक्तिबोध सन् 41 के आस-पास किसी ऐसे जीवन दर्शन के लिए छटपटा रहें थे; जो जीवन और जगत को ज्यादा सुसंगत दृष्टि से व्याख्यायित कर सके। संभवतः मुक्तिबोध के इन्हीं प्रश्नों के प्रतिउत्तर में भारतीजी अपने 23/10/41 के पत्र में प्रचलित वादों के प्रति अपना मत प्रकट करते हुये उन्हें लिखते हैं, कि *''मुझे प्रचिलित वादों में शांति नहीं मिलती। वे सभी किसी न किसी परिस्थिति की प्रतिक्रिया है। उनके मूल में इसलिए स्वार्थ और जीवन में अस्थिरता है। वास्तविक शांति और जीवनभरा विधान वाद नहीं होगा। उसमें शाश्वतता होगी। उसका आधार लक्ष्य व्यक्ति होगा-व्यक्ति जो अपना एकांकी अस्तित्व रखते हुए समाज का सर्जक अंग है, व्यक्ति जिसकी जीवन कला शील-नैतिकता पर टिकी होगी।''*[210] वह आगे यह भी लिखते हैं, कि यह सब कब, कैसे और किस रूप में होगा, वह नहीं जानते लेकिन उन्हें विश्वास है, कि मानव मानवरूप में जी सके, विकासशील हो सके, उसके लिए वैसा होना ही होगा। इसी के साथ इस संदर्भ में वह अपनी मान्यताओं की सीमाओं को भी रेखांकित करते हुए हैं, कि वह तो विद्यार्थी हैं, हो सकता है, कल को समझ कुछ और कहे कहावे। वह प्रचलित वादों से असंतुष्ट होते हुए भी उन्हें अनर्गल नहीं मानते हैं, बल्कि उन सब में थोड़ा थोड़ा सत्य मानते हैं, और आगे लिखते हैं, संभव है कि इन्हीं मतवादों के संवाद से कोई नया विकल्प बन सके।

'नया पथ' के संपादक रहे राजीव सक्सेना जी के पत्र में भी मुक्तिबोध से प्रगतिशीलता के संदर्भ में बात-चीत मिलती है। जिसमें मुक्तिबोध की यह प्रतिक्रिया कि वह जानबूझकर प्रगतिशील कविताएं नहीं लिखते और उनकी कविताएं 'नया पथ' पत्रिका के मानों के अनुसार नहीं है, का प्रतिउत्तर देते हुए सक्सेनाजी अपने 05/08/55 के पत्र में लिखते हैं, कि *''जहाँ तक मानों का प्रश्न है, हम एक ही मान से प्रेरित हैं और*

[210] वही-पृष्ठ संख्या-128

वह है लोकजीवन कि चेतना को ऊंचा उठाने का प्रयत्न। इसमें विचारों का महत्व है और कविता के क्षेत्र में संवेदनाओं का। यह शायद आप स्वीकार करेंगे कि 'दृष्टिकोण' का संवेदनाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। एक वस्तु के प्रति दो भिन्न दृष्टिकोणों वाले व्यक्तियों की दो भिन्न प्रतिक्रियाएं होंगी – दो भिन्न संवेदनाओं की प्राप्ति होगी।"[211] वह आगे लिखते हैं, कि इसलिए कवि का दृष्टिकोण मूलतः प्रगतिशील है, तो उसकी रचना भी प्रगतिशील हो यह स्वाभाविक ही है। वह मुक्तिबोध को आगे लिखते हैं, कि आपको हम प्रगतिशील ही मानते रहे हैं, और कोई कारण नहीं है कि आज न माने। वह उन्हें कविता के टेक्निक के प्रश्न पर उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता और समर्थन देते हुए उनकी टेक्निक का सम्मान करने की इच्छा भी व्यक्त करते हैं।

इसके अतिरिक्त हरिनारायण व्यास आजादी के बाद हिन्दी को कोई रास्ता न दिखाई पड़ने पर चिंता व्यक्त करते हैं, और इस स्थिति को अपने 17/11/47 को लिखे पत्र में मुक्तिबोध से साझा करते हैं। वह लिखते हैं कि *"15 अगस्त के बाद हिन्दी को कोई रास्ता दिखाई नहीं दिया है। मैंने तब से आज तक के साहित्य का सतर्क मनन किया है। एक बात अवश्य लगी कि लेखक को दुखानुभूति की अभिव्यक्ति ही अधिक प्रिय होती है। और बेचारा लेखक करे भी तो क्या? दिन ब दिन जीवनमान तापमान की भांति गिरता चला जा रहा है।"*[212] इस स्थिति को ही ज्यादा स्पष्ट करने या उसे जमीनी आधार देने के लिए आजाद भारत में पनप रहे भ्रष्टाचार और अवसरवादिता की ओर एक छोटे से उदाहरण के जरिए वह इशारा करते हैं। लिखते हैं कि *"भारत आजाद हो तो गया किन्तु पुरानी चाल अभी गई नहीं है। अभी उस दिन एक पोस्ट खाली थी। उसके लिए हजारों की दरख्वास्त आई यह तो पुरानी बात है मगर जनाब ऐसे भी* ***candidates*** *थे, जिनके*

---

[211] वही-पृष्ठ संख्या-169

[212] वही-पृष्ठ संख्या-178

लिए पं. नेहरू, बल्लभभाई पटेल तथा एक और कर्णधार की सिफारिशें प्राप्त थी।"[213] वह आगे लिखते हैं, कि ऐसी स्थिति में अगर लेखक दुख और निराशा की अनुभूति करता है तो क्या गलत है।

प्रकाशचंद्र गुप्त द्वारा लिखे गए पत्रों में भी मुक्तिबोध की रचनात्मकता पर टिप्पणी मिलती है। उनके जीवन संघर्षों से अच्छी तरह परिचित होने और उनके संघर्षों की ताप की छाया से उनकी रचनाओं के ग्रसित होने के कारण वह अपने 27/09/57 के पत्र में मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"मैं आपकी रचनाएं पढ़ता हूँ और उनमें नई शक्ति और नई ही चेतना अनुभव करता हूँ। मैं समझता हूँ कि प्राणों को होम करके ही उनकी बाजी लगाकर ही, ऐसे काव्य की सृष्टि होती है। इस पीड़ा की तुलना निरंतर प्रसव की पीड़ा से हुई है।"*[214] आगे इसी पत्र में तुलसी पर मुक्तिबोध का निबंध बहुत पसंद आया था। जिसके बारे में गुप्त जी लिखते हैं, कि इतने ऊंचें सैद्धांतिक स्तर पर बहस करके ही प्रगतिवादी आलोचना आगे जा सकती है।

नरेश मेहता के पत्रों में भी कुछ साहित्यिक वैचारिक चर्चाएं हमें मिलती हैं। अपनी वैचारिक उलझन और बिखराव में से उबरने के बाद विचार में आए हुए अनेक परिवर्तन को वह मुक्तिबोध को लिखे गए पत्र के माध्यम से जाहिर करते हैं। अपने 07/04/56 के पत्र में वह लिखते हैं, कि *"जहाँ पहले राजनीति एक साध्यवत लगती थी वहाँ आज साधन भर भी नहीं है। साहित्यकार का उत्तरदायित्व राजनीति के प्रति नहीं है। यह समाजोत्तर दायित्वपूर्ण आत्माभिव्यक्ति है। सामाजिक संघर्ष घोष का चेतन चित्र है किन्तु साहित्य के वृहद वृत्त में ये एकांश है।"*[215] इसी पत्र में वह आगे लिखते हैं, कि साहित्यकार एक ओर आध्यात्मिक होते हैं, जिनके निकट 'आत्मा' का प्रश्न होता है; दूसरी ओर राजनीतिज्ञ होते हैं, जिनके लिए समाज के ढाँचे

---

[213] वही-पृष्ठ संख्या-178

[214] वही-पृष्ठ संख्या-186

[215] वही-पृष्ठ संख्या-200

को परिपूर्ण करने का प्रश्न होता है। उनकी राय में साहित्यकार के लिए अपने माध्यम को इन दोनों ही सत्याश्रमों को सन्निहित करते हुए प्राप्ति पथ पर बढ़ना होता है। वह आगे लिखते हैं, कि अभी वह स्वयं बहुत उलझे हुए हैं, किन्तु यह निश्चित है कि साहित्यकार के लिए स्थिति अशेष को अब स्वीकारते हैं। एक अन्य पत्र में भी जो 04/12/63 का है, जिसमें नरेश मेहता मुक्तिबोध से किसी भी तरह की साहित्यिक चर्चा करने से पहले अपनी बात करना ज्यादा पसंद करते हैं। वह अपने पत्र में लिखते हैं, कि *" सच मानें आपसे यह लगता है कि जब तक अपनी बातें न कर ली जाएं तब तक साहित्य चर्चा बड़ी व्यर्थ लगती है। मूल्यों की संक्रांति, सांस्कृतिक विघटन, अनुभूतिहीनता.. सब मजाक इस अर्थ में लगते हैं, कि व्यक्ति इन सबसे बड़ा है।"*[216] वह आगे लिखते हैं कि बड़ा फिजूल लगता है, कि वह लिखे कि मैंने यह लिखा अब आप बताइए आपने क्या लिखा? यह सब बकवास है। साहित्य, जीवन से, संबंधों से बड़ा नहीं होता।

श्रीकांत वर्मा के पत्राचारों में भी अधिक मात्रा में साहित्यिक वैचारिक संवाद मिलते हैं। उसमें उनकी मुक्तिबोध की कविताओं पर टिप्पणी तो मिलती ही है, साथ ही उनकी वैचारिक पक्षधरता के प्रति भी स्पष्ट मत मिलते हैं। इन संदर्भों में उनके कई पत्रों पर दृष्टिपात किया जा सकता है। मुक्तिबोध की कविताओं पर उनके मत की बात करें तो इस लिहाज से श्रीकांत का 24/02/58 का पत्र ध्यान देने योग्य है। जिसमें वह मुक्तिबोध और अज्ञेय को केंद्र में रखकर उस समय की सारी नई कविता पर अपना निष्कर्ष देते हैं। वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"मुझे आज की सारी कविताओं में मुख्यतः दो प्रवृत्तियाँ नजर आती हैं:1- पीड़ा , 2- पीड़ा का दर्शन। एक समूचे सामाजिक जीवन के पर्सपेक्टिव में संवेदनशील व्यक्तित्व की* ***genuine*** *पीड़ा है, दूसरी में आत्म-यंत्रणा* ***selftorture*** *(आत्मरति) का दर्शन है, बौद्धिक धरातल पर स्वीकृति है। पहली का प्रतिनिधित्व आपमें होता है, द्वितीय का अज्ञेय में। मेरी थीसिस यह है। नेमिजी मुझसे*

---

216 वही-पृष्ठ संख्या-214

सहमत नहीं हैं, वह आत्म-यंत्रणा को, कवि-व्यक्तित्व का अनिवार्य अंग मानते हैं।"[217] इस संबंध में वह मुक्तिबोध से पूछते हैं, कि आप क्या सोचते हैं? स्पष्ट लिखिएगा। एक अन्य पत्र में वह वामपक्षी समाजवादी समाज- व्यवस्था में अपनी आस्था को जाहिर करते हैं, लेकिन उसके भीतर पनप रहे अवसरवाद से खिन्न हैं। मुक्तिबोध को संबोधित वह अपने 13/12/63 के पत्र में लिखते हैं, कि *"मैं अब भी एक वामपक्षी समाजवादी समाज में विश्वास करता हूँ, (और करूंगा) क्योंकि मनुष्यता के लिए एक मात्र रास्ता यही है, मगर जिस तरह का अवसरवाद हमारे सामाजिक जीवन में भीतर ही भीतर पनप रहा है, उसमें वामपक्ष भी बरी नहीं है। बल्कि अगर विचारधारा को छोड़ दिया जाए तो व्यवहार और कर्म में वाम और दक्षिण में कोई अंतर नहीं रह जाता है।"*[218] इस बात की पुष्टि के लिए वह अपने दिल्ली के अनुभवों को भी साझा करते हुए लिखते हैं, कि *"हम लोग यहाँ दिल्ली में रहकर हर रोज देखते हैं, कि किस प्रकार अपने को वामपक्षी और समाजवादी पार्टियां और लोग न केवल अपने बुद्धिजीवियों से बल्कि उस जनता से भी छल करते हैं, जिसकी दुहाई देते हुए उनकी जबान नहीं थकती।"*[219] वह इसी पत्र में आगे लिखते हैं, कि नई-पीढ़ी को कोसकर फिर से जीवित हुए पुराने प्रगतिवादी आलोचक गलती कर रहे हैं। उनकी राय में यह सही है कि बहुत-सा फैशनेबुल साहित्य भी भद्दी-रद्दी पत्रिकाओं में छप रहा है, मगर आज का साहित्य का महत्वपूर्ण अंश पहले से अधिक मानवीय है।

नामवर सिंह के पत्राचारों में भी नई कविता संबंधी समझ को लेकर, इस संदर्भ में अपने ज्ञान के अधूरेपन को लेकर, उनके अपने वैचारिक संघर्ष को लेकर 01/05/57 के पत्र में वह मुक्तिबोध को लिखते हैं कि - *"नई कविता का मैं तो एक विद्यार्थी हूँ: समझना चाहता हूँ। उसके संबंध में अपने विचारों का विश्लेषण करना चाहता हूँ। पिछले दो साल से जगह-जगह मुझे पुराने संस्कार वाले तथा एकदम अबोध, नई*

---

[217] वही,पृष्ठ-संख्या-246

[218] वही,पृष्ठ-संख्या-269

[219] वही,पृष्ठ-संख्या-270

पीढ़ी के युवकों के बीच नई कविता पर बोलने का अवसर मिला है: जहाँ मुझसे नई कविता के नए भावबोध के ठोस उदाहरण मांगे गए। यथाशक्ति मैंने उनकी मांग का कुछ भाग पूरा किया, लेकिन इन गोष्ठियों ने मेरे अपने अज्ञान को स्वयं मेरी ही आँखों के सामने लाकर पहाड़ की तरह खड़ा कर दिया। तब से मैं अपनी ही कठिनाइयों से लड़ रहा हूँ।"[220] आगे इसी पत्र में वह लिखते हैं, कि प्रगतिवाद के रूढ़ संस्कार और निजी अनुभवों के बीच का संघर्ष भी कम नहीं है, इसलिए वह 'नई कविता' पर अपने लिए एक छोटी सी समीक्षा की पुस्तक तैयार कर जिसे छपने से पूर्व वह उसे मुक्तिबोध और नेमि जी के पास विचारार्थ भेजने की इच्छा जाहिर करते हैं। वह उनके विचारों का पूरा लाभ उठाना चाहते हैं। वह लिखते हैं, कि इस तरह के निजी संपर्क से जितना काम हो सकता है, उतना 'प्रगतिशील लेखक संघ' के पुनर्जीवित करने से नहीं हो सकता। अपनी इस मान्यता के पीछे वह अपने अनुभव जाहिर करते हैं, कि ऐसे संगठनों में अधिकांश जन उच्च कोटि के अवसरवादी हैं। उनके लिए विचार कपड़े हैं, किसी भी समय बदले जा सकते हैं और उसे डायलेक्टिक का नाम दे सकते हैं। हमारा तो मरण है! यह हमसे न होगा।

अशोक वाजपेयी के भी पत्राचारों में मुक्तिबोध की कविताओं के प्रति उनकी आलोचनात्मक दृष्टि मिलती है। इस लिहाज से उनके दो पत्रों को देखा जा सकता है। पहला पत्र 10/02/60 का है, जिसमें रिटचिंग की जा रही कविता संभवत: 'अंधेरे में' के बारे में वाजपेयी जी उन्हें लिखते हैं, कि *"वह कविता नई कविता की महत्तम उपलब्धि है और समूचे आधुनिक हिन्दी काव्य की और गौरवनिधियों में से एक। मैं नहीं जानता कि अब तक एक दूसरा निराला हो सकता है या नहीं (या कि उसे होना चाहिए या नहीं) पर कहने को विवश हूँ (हाँ उस कविता की गरिमा और सघनता विवश ही करती है) कि मैं अब मुक्तिबोध को दूसरा निराला मानता हूँ।"*[221] वह आगे लिखते हैं, कि यह निष्कर्ष अतिश्योक्ति या भावुकतावश नहीं बल्कि अपनी पूरी समीक्षा दृष्टि से परोक्षित हो चुकने के बाद ही इस अनिवार्य सच पर आ सका हूँ। 'अंधेरे में' कविता के संदर्भ

---

[220] वही,पृष्ठ-संख्या-281-282

[221] वही,पृष्ठ-संख्या-311

में वाजपेयी जी ने स्वतंत्र रूप से अपने लेख में भी नई कविता कि महत्तम उपलब्धि के रूप में उसे स्वीकार किया है। लगभग यही बात गोपेश्वर सिंह अपने एक लेख 'अंधेरे में और हिन्दी कविता के पचास वर्ष' में भी स्वीकार करते हैं, और कहते हैं कि *"अंधेरे में नई कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि है। वह न सिर्फ 'नई कविता' की, बल्कि संपूर्ण छायावादोत्तर दौर की सबसे बड़ी उपलब्धि है।"*[222] वाजपेयी जी के दूसरे पत्र में भी उसी कविता के संदर्भ में टिप्पणी देखी जा सकती है, जो 03/03/64 की है। जिसमें 'आशंका के द्वीप: अंधेरे में' कविता की पीछे के दिनों की गोष्ठी में ज्यादातर पाठ स्वयं द्वारा और थोड़ा पाठ श्रीकांत द्वारा किए जाने की सूचना देते हुए वह मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *"सभी लेखक मित्रों ने उसकी प्रशंसा की और एक बहुत **intense** कविता बताया। वस्तु-संगठन की दृष्टि से भी हम सबको वह बड़ी **compact** जान पड़ी। सभी को लगा कि समकालीनता का इतना ज्वलंत बोध और सच्चे राजनैतिक अनुभव को प्रामाणिक बनाकर प्रतिबिंबित करने का इतना सफल प्रयत्न अन्यत्र कहीं नहीं है।"*[223] वह आगे लिखते हैं कि कविता की विवशता का विचार ही उसकी वस्तुगत सघनता को और भी समृद्ध और गहरा बनाता है।

रमेशचंद्र शाह द्वारा लिखा पत्र एक प्राप्त होता है, जिसमें मुक्तिबोध के लिखे लेख पर उनकी प्रतिक्रिया मिलती है। अपने 09/01/62 के पत्र में वह लिखते है कि *"आपका लेख 'आधुनिक कविता की दार्शनिक पार्श्वभूमि' पढ़ा। पढ़कर दुबारा-तिबारा पढ़ा। ऐसी ठोस सारगर्भ चीजें हिन्दी में कहाँ पढ़ने को मिलती हैं! हिन्दी में सैद्धांतिक आलोचना तो एक कुहेलिका है। हर आलोचक अपना झण्डा अलग ही लहराना चाहता है। मैं उक्त लेख में प्रतिपादित आपके दृष्टिकोण का कायल हूँ। आपने हिन्दी की (प्रत्युत*

---

[222] संपादक – शाही,सदानंद, साखी(पत्रिका) अंक : 26, जुलाई-दिसंबर:2015, पृष्ठ-संख्या-63

[223] संपादक-मुक्तिबोध, रमेश गजानन, वाजपेयी,अशोक, मेरे युवजन मेरे परिजन (ग.मा.मुक्तिबोध के नाम पत्र) राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण: 2007, पृष्ठ-संख्या-319

हिन्दी के साहित्य मात्र की) एक मूलभूत कमजोरी का उद्घाटन किया है। स्वयं एक सफल कवि होने के नाते आपने नई कविता की तथाकथित बौद्धिकता का निर्मम विश्लेषण प्रस्तुत किया है, जो सर्वथा समीचीन है।"[224] आगे इसी पत्र में वह मुक्तिबोध के मानों से सहमति जताते हुए कहते हैं, कि वास्तव में व्यापक मानव समस्याओं का मर्म-बोध लेखक को दार्शनिक की तरह सोचने के लिए विवश करता ही है।

आग्नेश्का कोआलस्का के पत्राचार भी मुक्तिबोध के साथ विचार-विमर्श से असंपृक्त नहीं है। अपने भीतर समाए हुए उन्मूलित व्यक्ति की समस्या को लेकर वह मुक्तिबोध से इस प्रश्न को पत्र के ही माध्यम से उनके सामने रखती हैं। जिसका यथोचित जवाब मुक्तिबोध पूरी निश्छलता से अपने भीतर के 'भय' को (वह भय जो साम्यवादी देशों से उन्मूलित व्यक्तियों के प्रतिक्रांतिवादी या प्रतिक्रियावादी शिविरों में शामिल हो जाने को होता है) प्रकट करते हुए देते हैं। उसी भय के प्रति आग्नेश्का मुक्तिबोध को आश्वस्त करते हुए प्रतिउत्तर में अपने 15/06/63 के पत्र में उन्हें लिखती हैं, कि *"यह बहुत अच्छा लगा कि आपने उसे साफ-साफ जाहिर कर दिया। लाभप्रद भी हुआ, अपनी स्थिति के उस पहलू पर शायद मैंने अभी तक समुचित ध्यान नहीं दिया है, और यह सही है, कि हमारे युग में केवल दिल से ईमानदार होना काफी नहीं, सर्वथा सतर्क रहने की आवश्यकता होती है। वरना बहुत-से लोगों की भांति, चाहे अनजाने ही, चाहे 'मानव-मूल्यों' की हिमायत करने के भले इरादे से ही, प्रतिक्रियावादियों के शिविर में पहुँचने का, उनके 'गाढ़, सुंदर जाल' में फँसने का खतरा उपस्थित है। इस संबंध में बेखबर और बेफिक्र होना, दयनीय मूर्खता का परिचय देना है।"*[225] इसी पत्र में आगे वह इस समस्या के प्रति सचेत रहने की भी बात कहती हैं। एक अन्य पत्र है, जो 13/03/64 का है। जिसमें मुक्तिबोध की दो किताबें पाठकों के सामने आने वाली हैं, यह जानकर आग्नेश्का खुशी प्रकट करती है। आगे इसी पत्र में मुक्तिबोध की रचनाओं के समग्र मूल्यांकन के संदर्भ में वह अपनी

---

[224] वही,पृष्ठ-संख्या-335

[225] वही,पृष्ठ-संख्या-347

राय प्रकट करते हुए उन्हें लिखती हैं, कि *"निश्चित रूप से यह बात बहुत-से लोगों ने महसूस की है, जो कि न केवल अपने निजी अनुभव के आधार पर कहूँगी कि आपकी सब कृतियाँ इकट्ठा कर, मिलाकर देखने और झेलने और परखने से ही आपके काव्य का समुचित मूल्यांकन संभव होगा। आपकी कविताओं की भाव-योजना, और प्रतीक योजना में ऐसा सामंजस्य है, जो एक-एक रचना का योगदान समझने में सहायक होगा। जैसे कुछ 'cross references' स्थापित किए जाएं, जिससे इस पूरी स्फटिक राशि के कोण और अंतर्दिशाएं, तमाम* ***inner structure*** *हृदयंगम हो सके।*[226] आगे इसी पत्र में आग्नेश्का मुक्तिबोध की कविताओं के विशेष अध्ययन की अपनी इच्छा जाहिर करती हैं, लेकिन साथ ही उनकी रचनात्मकता के बारे में वह लिखती हैं, कि *"ऐसा भव्य पहाड़ है कि जिसे पार करने में अगर अपने को अक्षम मानना पड़ेगा, महज नीचे से निहारने पर बात खत्म होगी तो भी अपने आत्मविकास की दृष्टि से यह वरदान सिद्ध होगा।"*[227]

मुक्तिबोध को संबोधित स्वर्ण किरण के भी पत्राचार प्राप्त होते हैं, जिनमें मुक्तिबोध की 'उर्वशी' पर आलोचना के प्रति उनकी प्रशंसात्मक टिप्पणी हमें प्राप्त होती है। वह अपने 12/02/64 के पत्र में इस संदर्भ में मुक्तिबोध को लिखते हैं, कि *" 'उर्वशी' पर की गई आप के द्वारा समीक्षा मात्र समीक्षा ही नहीं, गंभीर समालोचना है। 'कल्पना' ने इसे प्रथम स्थान देकर अपनी गुण-ग्राहकता का ही परिचय दिया है। शास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय आलोक में आपने जो उर्वशी के दार्शनिक आडंरत्व का उद्घाटन एवं विश्लेषण किया है, वह साधारण ज्ञान-संपदा की सूचना नहीं देता।"*[228] वह इसी पत्र में आगे कहते हैं कि उर्वशी को कृत्रिम मनोविज्ञान पर आधारित काव्य कहना बड़े साहस का द्योतक है।

---

[226] वही,पृष्ठ-संख्या-352

[227] वही,पृष्ठ-संख्या-352

[228] वही,पृष्ठ-संख्या-353

अंततः यह कहा जा सकता है, कि मुक्तिबोध को संबोधित इन पत्रों में उनकी रचनात्मक समस्याओं पर उनके मित्रों द्वारा वैचारिक विश्लेषण तो मिलता ही है। साथ ही उनकी रचनात्मकता पर भी उन मित्रों की आलोचनात्मक टिप्पणियां मिलती हैं, जो मुक्तिबोध के रचनात्मक महत्व को रेखांकित करती हैं। इसके अतिरिक्त वैचारिक साम्यता और मतभेदों की अनुगूँज भी सुनाई पड़ती है। इस प्रकार विचार-विमर्श की वह झांकी प्रस्तुत होती है, जो इन लेखकों की मुक्तिबोध के साथ रही है।

उपसंहार

और अंत में इन तीनों अध्यायों की यात्रा से गुजरते हुए हम कह सकते हैं, कि प्रथम अध्याय में मुक्तिबोध की जीवन यात्रा और उनके व्यक्तित्व पर विहंगम दृष्टिपात किया गया है। प्रथम अध्याय के पहले उप-अध्याय में उनकी जीवन यात्रा को छः बिंदुओं के बहाने देखने की कोशिश की गई है। जिसमें उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, उनके बचपन का पालन-पोषण और उनकी शिक्षा-दीक्षा, प्रेम-प्रसंग और उनके विवाह की झलक हम पाते हैं। उनका आजीविका संघर्ष तो जीवन पर्यंत रहा। स्थितियाँ अपने अनुकूल न पाकर उन्होंने ढेरों नौकरियां छोड़ी-पकड़ी। इसी के साथ उनकी बीमारी तदुपरांत उनकी मृत्यु को भी रेखांकित किया गया है। कुल मिलाकर उनके जीवन का पूर्वार्द्ध तो सुखद रहा लेकिन उसका उत्तरार्द्ध भयानक संघर्षों भरा रहा। उनका उत्तरार्द्ध कई तरह की संघर्षों की गाथा रही। वह उनके आजीविका संघर्ष से लेकर रचनात्मक संघर्ष तक की यात्रा रही है।

प्रथम अध्याय का दूसरा उपाध्याय मुक्तिबोध का व्यक्तित्व जिस पर कई दृष्टियों से प्रकाश डाला गया है। जो मुक्तिबोध के पूरे आवयविक व्यक्तित्व को हमारे सामने प्रकट करती है। उनके सैद्धांतिक और व्यावहारिक व्यक्तित्व को विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से जिसमें उनके रचनात्मक व्यक्तित्व, जीवन व्यापार में उभरने वाला व्यक्तित्व और उनके पारिवारिक व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश की गई है। जिसमें हम पाते हैं, कि मुक्तिबोध के व्यक्तित्व पर उनके माता-पिता के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। पिता की निष्ठा और ईमानदारी से भरी उनकी वीर-जीवन इतिहास कथा मुक्तिबोध को प्रेरणाएं देती है। तो उनकी माँ ने उन्हें सामाजिक दंभ, स्वांग और ऊँच-नीच की भावना, अन्याय और उत्पीड़नों से कभी भी समझौता

न करते हुए उनसे घृणा करना सिखाया। जो उनके व्यक्तित्व में घुला मिला सा हम पाते हैं। मुक्तिबोध के रचनात्मक व्यक्तित्व को हम जितना अधिक सजग और सचेत पाते हैं, उतना ही व्यावहारिक जीवन में उन्हें असजग और बेपरवाह के रूप में हम उन्हें देखते हैं। हालांकि उनके व्यावहारिक जीवन के जीतने भी प्रसंग हैं। जो उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं। वह सभी उनके विचार और चिंतन की दुनिया में प्रवेश करने के शुरुआती दौर के रहें हैं, लेकिन इसके बावजूद मुक्तिबोध दुनियादारी में कच्चे रहें हैं। उनके जीवन के कई प्रसंग उनके व्यक्तिवादी व्यवहार को जाहिर करते हैं। इसके अतिरिक्त मुक्तिबोध की घुमक्कड़ वृत्ति, फक्कड़ स्वभाव और मित्र जीवटता की वृत्ति भी साफ उभर कर सामने आती है।

द्वितीय अध्याय मुक्तिबोध द्वारा लिखे गए पत्रों का है। जो मुक्तिबोध के व्यक्तित्व का आईना है, जिसमें उनके हाव-भाव, आचार-विचार और उनकी अंतरंगता आदि से हम परिचित हो पाते हैं। इसी के साथ यह पत्र उनके जीवन संघर्ष और रचनात्मक संघर्ष को भी उद्घाटित करता है। द्वितीय अध्याय को दो उपाध्यायों में देखने की कोशिश की गई है। जिसमें पहले में उनकी निजता साफ उभर कर आती है। जिसमें उनकी मित्रों के प्रति अंतरंगता, उनका आर्थिक संघर्ष और मदद की अधिकारपूर्ण आकांक्षा, आजीविका संघर्ष के साथ-साथ रचनात्मक संघर्ष, जीवन की ऊब और घुटन में मानव की मिठास से साहस सजोने और जिंदगी को एक घूंट में पी लेने वाले मुक्तिबोध के जीवन की वह सारी निजताएँ प्रकट होती हैं। अपने जीवन की उन सारी निजताओं के साथ प्रकट होते हैं, जिसे वह एक विशेष समय और परिस्थिति में जी रहे थे। दूसरा उप-विभाग उनकी साहित्यिक वैचारिकी का है, जिसपर दृष्टिपात करने पर हमें अनायास श्रीराम वर्मा की कही हुई बात याद आती है, कि 'मुक्तिबोध के रचनात्मक व्यक्तित्व को समझने के लिए, उनकी रचना प्रक्रिया में प्रवेश के लिए, उनके सरोकारों और तनाओं में गहरे उतरने के लिए उनकी समीक्षाओं, उनकी साहित्यिक डायरी और उनकी पत्रकारिता से भी अधिक मूल्यवान उनके पत्र हैं।' इन पत्रों के आधार पर यह तो स्पष्ट है कि मुक्तिबोध सृजन और जीवन को अभिन्न मानते हैं। उनकी चिंता इन पत्रों में प्रमुख रूप से

मार्क्सवादी दृष्टि की संकीर्णता और उसके मानवीय अनुभवों की अपम्पार भिन्नताओं से गुरेज कर लेने के प्रति है। नेमिजी से बात-चीत में इसका जिक्र आता है, तो वहीं वीरेंद्र और नई कविता के संदर्भ में नामवर सिंह के साथ भी, इन पत्रों में मुक्तिबोध मार्क्सवादी दृष्टि के उत्तरोत्तर उत्थान में अपना प्रयास देते हैं। वह श्रीकांत वर्मा से भी कृति के अन्तःस्वरूप को अधिकाधिक नई कविता में प्रगतिशील तत्त्व क्या है? और आगे उसकी कौन सी दिशा होनी चाहिए। इसी पर ध्यान केंद्रित करने का आग्रह करते हैं। कुछ पत्रों में तो मुक्तिबोध की वैचारिकी के साथ उनकी विश्लेषणात्मक क्षमता भी अपने पूरे उत्कर्ष के साथ प्रकट होती है।

तीसरा अध्याय मुक्तिबोध को लिखे गए पत्रों का है। वह उन मानवीय संबंधों का संवेदनात्मक दस्तावेज है, जो मुक्तिबोध और उनके मित्रों लेखकों के पारस्परिक आचार-व्यवहार से पनपा और विकसित हुआ। यहाँ मानवीय संबंध कोरी मानवीयता का द्योतक न होकर बल्कि मानव संबंधों की एक विकसित स्थिति या उसके विकसित चरण का नाम है। जहां हम मुक्तिबोध के प्रति उनके मित्रों की अंतरंगता से रूबरू होते हैं। जिसके पहले उप-अध्याय में हम पाते हैं, कि मुक्तिबोध अपने मित्रों के लिए कितने महत्वपूर्ण रहें हैं। उनसे विलगाव की स्थिति में उनके मित्रों का शिकायती रवैया, मुक्तिबोध के स्वास्थ्य और उनके आजीविका की चिंता उनके मित्रों की चिंता हो जाने को कई पत्रों में देखा जा सकता है। उनके दुख और पीड़ा से दुखी होने वाले मित्र इसमें शामिल हैं। उनकी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति उस अंतरंगता कि भावभूमि को प्रकट करती है। नेमि बाबू तो उनके नौकरी खो देने से दुखी तो होते ही हैं। साथ ही उन्हें पैसे भी भेजते हैं और उनके लिए नौकरी तलाश करने का भी आश्वासन देते हैं। मुक्तिबोध बीमारी में भी अशोक वाजपेयी को लंबा पत्र लिखते हैं। साथ में उनसे मिलने की तबीयत की भी बात करते हैं। जिससे वाजपेयीजी भाव विह्वल हो उठते हैं। श्रीकांत को तो मुक्तिबोध रेगिस्तान में चलते हुए व्यक्ति को हरित भूमि की तरह दिखाई पड़ते हैं, और शमशेर केवल मुक्तिबोध से ही स्नेह नहीं करते बल्कि उनके कविताओं के भी प्रेमी हैं। इस प्रकार की तमाम अंतरंगता हम उन मित्रों द्वारा संबोधित पत्रों में पाते हैं। इसके अतिरिक्त तीसरे अध्याय के

दूसरे उप-अध्याय में यह तमाम मित्र अपने जीवन संघर्षों को भी मित्र मुक्तिबोध के समक्ष प्रकट करने से झिझकते नहीं बल्कि आत्मीयता का रंग पाकर उनके सामने पूरी निश्छलता के साथ प्रकट होते हैं। जहां प्रभाकर माचवे अपने इलाहाबाद की रेडियो की नौकरी से असंतुष्टि को साझा करते हैं, तो वहीं अज्ञेय जीवन के दबाव से शरीर के टूटने और काम की अधिकता और उसमें संतोष पाने के मार्ग कम होने की स्थिति को जाहिर करते हैं। शरतचंद्र भी अपने ऊब और अकेलेपन को जाहिर करते हैं, और कला मार्ग पर अकेले चलने में खुद को अक्षम पाते हैं। भारतभूषण अपने मिल के काम से असन्तुष्ट दिखाई पड़ते हैं। मिल में काम करने को अपने सारे सिद्धांतों, आदर्शों और विश्वासों की निंदा के रूप में देखते हैं। वहीं नेमिचंद्र जैन भी अपने जीवन की नीरसता को जाहिर करते हैं। वह अपने जीवन की स्वाभाविक वृत्ति के खो जाने को भी मुक्तिबोध से साझा करते हैं। प्रकाशचंद्र गुप्त अपने हाई ब्लड प्रेशर और दाहिने अंग के पक्षाघात को बयान करते हैं। वहीं श्रीकांत अपने दिल्ली के कुत्सित अनुभवों को साझा करते हैं, जहां उनकी तबीयत घबराती है। वह अपनी आर्थिक हालत खराब होने के साथ नौकरी की तलाश को भी जाहिर करते हैं। आग्नेश्का भी उन्हें अपनी बीमारी के बारे में बताती हैं। इस तरह जीवन संघर्ष के वैविध्यपूर्ण पहलू मित्र मुक्तिबोध के सम्मुख अनायास ही प्रकट होते हैं।

तीसरे अध्याय के साहित्यिक गतिविधियों वाले उप-अध्याय में हम पाते हैं, कि कैसे मुक्तिबोध अपने शुरुआती कहानी लेखन को लेकर अन्य लेखकों, प्रकाशकों से राय लेते रहें। जिसमें जैनेन्द्र, अज्ञेय और शिवदान सिंह चौहान का नाम लिया जा सकता है। तार सप्तक की योजना और उसके पूर्ण होने की जानकारी उपलब्ध होती है। साथ ही मुक्तिबोध की उसमें भूमिका का भी पता चलता है। पुस्तक की संरचना के संदर्भ में अज्ञेय उनसे सलाह भी लेते हैं। मुक्तिबोध के पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों से भी संबंध रहें हैं, जिनमें वह बराबर प्रकाशित होते रहें। जिसमें ‘कर्मवीर’, ‘हंस’, ‘विविधा’, ‘कमला’, ‘प्रदीप’, ‘प्रतीक’, ‘आलोचना’, ‘नया साहित्य’, ‘नई दिशा’, ‘वसुधा’, ‘कृति’ और ‘कल्पना’ जैसी पत्रिकाओं को देखा जा

सकता है। जिनमें प्रकाशन के लिए निरंतर मुक्तिबोध से आग्रह किया जाता रहा। वसुधा और कृति में तो उनकी विशेष उपलब्धि रही, जिसे उनके संपादकों ने स्वयं स्वीकार किया। इन साहित्यिक गतिविधियों से यह भी ज्ञात होता है, कि मुक्तिबोध केवल अपनी ही रचनाएँ प्रकाशन के लिए नहीं भेजते थे। बल्कि अपने मित्रों और नयें लेखकों को भी प्रोत्साहित करते थे। इस संदर्भ में 'हंस' में अमृतराय को रामकृष्ण श्रीवास्तव, प्रमोद कुमार, अनिल और श्रीकांत की कविताएं प्रकाशन के लिए भेजे जाने के प्रसंग मिलते हैं। यहाँ तक कि मुक्तिबोध द्वारा 'कृति' में प्रकाशन के लिए विनोद कुमार शुक्ल की भी कविताएँ प्रस्तावित की गई। जिसे बड़ी सराहना मिली। कुल मिलकर इस उप-अध्याय में हम मुक्तिबोध के रचनात्मक नेपथ्य के महत्वपूर्ण प्रसंग, रचना के प्रकाशन और उसकी जरूरतों की रोचक चर्चाएँ हमारे सामने आती हैं। इसी बहाने साहित्यकारों और संपादकों से उनके साझे संबंध भी उभर कर प्रकट होते हैं।

इसके अतिरिक्त इस तीसरे अध्याय के चौथे उप-अध्याय में हम पाते हैं, कि मुक्तिबोध को इन संबोधित पत्रों में उनकी रचनात्मक समस्याओं पर उनके मित्रों द्वारा किया गया वैचारिक विश्लेषण तो मिलता ही है। जिसमें अज्ञेय और वीरेंद्र कि टिप्पणियां देखी जा सकती हैं। साथ ही मुक्तिबोध की रचनात्मकता पर उन मित्रों की आलोचनात्मक टिप्पणियाँ भी मिलती हैं। जिसमें वीरेंद्र, प्रकाशचंद्र गुप्त, श्रीकांत वर्मा, अशोक वाजपेयी, रमेशचंद्र शाह और आग्नेश्का सोनी के साथ-साथ स्वर्ण किरण का भी नाम लिया जा सकता है। यह सारी टिप्पणियाँ मुक्तिबोध के रचनात्मक महत्व को रेखांकित करती हैं। इसके अतिरिक्त इन पत्रों में मुक्तिबोध की उनके कुछ मित्रों से वैचारिक समानता और कुछ मित्रों के साथ उनके वैचारिक मतभेद भी जाहिर होते हैं। इस प्रकार विचार-विमर्श की वह झाँकी प्रस्तुत होती है, जो इन लेखकों की मुक्तिबोध के साथ रही है।

निष्कर्ष रूप में हम यहाँ कह सकते हैं, कि यह तीनों अध्याय मुक्तिबोध को जानने बूझने का प्रयास है। तीनों अध्याय एक दूसरे से विलग होते हुए भी एक दूसरे से जुड़े हैं। हर अध्याय की अपनी खास विशिष्टता

है, जो मुक्तिबोध के जीवन के बारे में उनके व्यक्तित्व के बारे में, उनके रचनात्मक संघर्ष, उनके वैचारिक संघर्ष जीवन और आजीविका के संघर्ष को रेखांकित करती है। साथ ही उनके मित्रों के साथ उनके संबंधों को भी रेखांकित करती है। मित्रों की अंतरंगता का भूगोल तो प्रकट होता ही है, साथ ही जीवन के उतार-चढ़ाव दुख-सुख भी जाहिर होते हैं। मुक्तिबोध के साहित्यिक संबंधों की भी शिनाख्त होती है। जिसमें साहित्यिक गतिविधियों और उनके साहित्यिक वैचारिकी के भी असंबद्ध रूप में साक्षात्कार होते हैं। इस तरह मुक्तिबोध को केवल उनके जीवन यात्रा के बहाने ही नहीं या उनके केवल संवेदनात्मक अभिव्यक्तियों के भरोसे भी नहीं बल्कि उन लोगों के साझे संबंधों के भरोसे भी और उसमें भी उनके राग-विराग, चिंता-प्रतिचिन्ता, विचार-विमर्श, सहमति-असहमति के उस पूरे मैत्रीपूर्ण सामाजिकता के साथ मुक्तिबोध की उस परिधि को समेटने की कोशिश की गई है, जिसमें वह जी रहे थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ –

1 – *मुक्तिबोध, रमेश गजानन, अशोक वाजपेयी* (संपा .), *मेरे युवजन मेरे परिजन (ग . मा . मुक्तिबोध के नाम पत्र),* राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण : 2007

2 – *जैन , नेमिचन्द्र* (सम्पा .), *मुक्तिबोध समग्र (खंड-7)*, राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण : 2019

सहायक ग्रंथ –

1 – *अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन* (सम्पा .), *तार सप्तक* , भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई-दिल्ली , बारहवाँ संस्करण – 2019

2 - *जैन , नेमिचन्द्र* (सम्पा .), *मुक्तिबोध समग्र (खंड-1)*, राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण : 2019

3 - *जैन , नेमिचन्द्र* (सम्पा .), *मुक्तिबोध समग्र (खंड-6)*, राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, पहला संस्करण : 2019

4 – *जैन , कान्तिकुमार, महागुरु मुक्तिबोध : जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर* , सामयिक प्रकाशन , नई-दिल्ली, संस्करण : 2018

5 – *ठाकुर , रमेश , अलक्षित मुक्तिबोध,* प्रभाकर प्रकाशन, ईस्ट-दिल्ली, संस्करण – 2021

6 – *नवल, नंदकिशोर, मुक्तिबोध,* साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई-दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1996

7 – *मेहता, नरेश , मुक्तिबोध , एक अवधूत कविता,* लोक भारती प्रकाशन – इलाहाबाद, संस्करण : 2012

8 – *मुक्तिबोध, गजानन माधव, प्रतिनिधि कविताएँ,* राजकमल प्रकाशन , नई-दिल्ली, चौथा संस्करण – 1991

9 – *मुक्तिबोध, गजानन माधव, चाँद का मुँह टेढ़ा है,* भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई-दिल्ली, 20वाँ संस्करण : 2010

10 – *वर्मा, मोतीराम , लक्षित मुक्तिबोध,* विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली , प्रथम संस्करण : 1972

11 – *शर्मा , विष्णुचंद्र , मुक्तिबोध की आत्मकथा,* संवाद प्रकाशन, मेरठ , संस्करण तीसरा : 2018

12 – *सिंह , शमशेर बहादुर, प्रतिनिधि कविताएँ , डॉ. नामवर सिंह* (संपादक), राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, नौवां संस्करण : 2018

13 – *हाड़ा , माधव* (सम्पा.), *कथेतर,* साहित्य अकादेमी , नई-दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2017

पत्र पत्रिकाएँ –

1 – *पाण्डेय , रतन कुमार* (सम्पा.), *अनभै* (अर्द्धवार्षिक पत्रिका), अनंग प्रकाशन, वर्ष : 12 , अंक : 46-47, अप्रैल-सितंबर : 2015

2 – *शाही , सदानंद* (सम्पा .), *साखी* (अर्द्धवार्षिक), अंक : 26, जुलाई-दिसंबर : 2015

3 – *सिंह, नामवर*, (प्र. सम्पा.) , *आलोचना* (त्रैमासिक), राजकमल प्रकाशन , 55 वाँ अंक, जुलाई-सितंबर : 2015

4 - *सिंह, नामवर*, (सम्पा.) , *आलोचना* (त्रैमासिक), राजकमल प्रकाशन, नई-दिल्ली, वर्ष-32, अंक-66, जुलाई-सितंबर : 1983

Shodh-Rityu तिमाही शोध–पत्रिका

PEER Reviewed & Refereed JOURNAL

ISSUE-26 **VOLUME-2** ISSN-2454-6283 अक्तूबर–दिसंबर, 2021

IMPACT FACTOR - **(IIJIF-7.312)** **SJIF-6.586,** IIFS-4.125,

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

सम्पादक
डॉ.सुनील जाधव ,नांदेड
9405384672

तकनीकी सम्पादक
अनिल जाधव, मुंबई

पत्राचार हेतु पता–
महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी, हनुमान गढ़ कमान के सामने, नांदेड–431605

ISSUE-26 VOL-2 IMPACT- IIJIF-7.312 ISSN-2454-6283 अक्तूबर–दिसंबर, 2021

20.मित्रता का अंतरंग भूगोल (मुक्तिबोध के नाम सम्बोधित पत्रों के बहाने)

–आशीष कुमार वर्मा
एम. फिल.(शोधार्थी) हिंदी डिपार्टमें, हैदराबाद सेंट्रल यूनिवर्सिटी

वह मित्र का मुख/ज्यों अतल आत्मा हमारी बन गयी साक्षात् निज सुख।/वह मधुरतम हास/जैसे आत्म–परिचय सामने ही आ रहा है मूर्त हो कर।/जो सदा ही मम हृदय–अन्तर्गत छिपे थे/वे सभी आलोक खुलते/जिस सुमुख पर !/वह हमारा मित्र है,/आत्मीयता के केन्द्र पर एकत्र सौरभ ✧ वह बना/मेरे हृदय का चित्र है ! 1 "पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिस एक कवि ने मरणोत्तर मूर्धन्यता अर्जित की, वे है गजानन माधव मुक्तिबोध । वे एक ऐसे कवि भी रहें हैं, जिनकी कविता में मित्रता का एक विराट स्पन्दित परिसर महसूस किया जा सकता है, दरअसल उन्हें एक अनोखे अर्थ में एक बड़ा मित्र कवि भी कहा जा सकता है। एक स्तर पर उनकी कविता मित्र संवाद है। वह जो सुने उसको तो सम्बोधित है ही, वह अपने मित्रों को भी लगातार और विशेष रुप से सम्बोधित है।"2 – अशोक वाजपेयी

मुक्तिबोध एक मित्रजीवी व्यक्ति रहें हैं, मित्र उनके लिए मीठी याद है, उनके लिए प्रेरणा देने वाले हैं, उन्होंने कई कविताएं मित्रों को सम्बोधित कर लिखी हैं, निःसंदेह मुक्तिबोध की अंतरंगता का भूगोल मित्रता की संस्कृति से निर्मित है, इस निर्मिति में कईयों की हिस्सेदारी है, उस हिस्सेदारी में प्रवेश करने के लिए उन मित्रों द्वारा लिखे गए पत्र ही सबसे ज्यादा प्रमाणित हो सकते हैं, जिसके माध्यम से मित्रता की इस साझी जमीन को बखूबी समझा जा सकता है, आत्मीयता के वैविध्यपूर्ण रंग, उनकी निजी संवेदनाओं को मुक्तिबोध के प्रति समझा जा सकता है, जीवन के विविध पहलुओं पर दुखात्मक एवम् सुखात्मक स्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाएं, उनकी संवेदनाएं मित्रता के उस अंतरग भूगोल को प्रकट करती है, कि जो भूगोल उन लेखक मित्रों और मुक्तिबोध के पारस्परिक सम्बन्ध से निर्मित हुआ, उन पारस्परिक सम्बन्धों के संवादी प्रमाण के तौर पर उन पत्रों को रेखांकित करना ही यहां हमारा उद्देश्य है, जिसके बहाने मुक्तिबोध के प्रति उनके मित्रों की मित्रता के अंतरंग भूगोल से साक्षात्कार किया जा सकेगा, जिन्हें अब हम एक–एक करके आपके सामने प्रस्तुत कर रहें हैं, जिसकी शुरुआत प्रभागचन्द्र शर्मा से की जा सकती है, जो मुक्तिबोध के कॉलेज के दिनो से ही मित्र रहें हैं, मुक्तिबोध के नौकरी के लिए मिडिल स्कूल, बड़नगर चले जाने पर 1/07/1938 के पत्र में वह अपने हृदय के भाव उनसे साझा करते हुये कहते हैं कि "तुम बहुत दूर पहुंच गए भाई इन्दौर थे, तो मिल भी लेते थे अब वह भी दुश्वार हो गया। मैं यह नहीं समझता तुम यह कहां तक समझ पाए हो कि मेरे मन के अत्यन्त स्नेहपूर्ण सुकोमल तन्तु तुमसे उलझकर रह गए है। तुम्हारे प्यार का जो अप्रत्यक्ष जल उन्हें मिलता रहा है उसे, सिंचनहार अपनी सृष्टि से विस्तार के साथ अधिक बारिकी से जिस तरह नहीं ध्यान रख सकता ठीक उसी तरह तुम्हें भी ठीक पता चाहे न हो पर मैं उसे खूब गहरे से अनुभव कर रहा हूं।"3 दरअसल मुक्तिबोध के प्रेम के इस अप्रत्यक्ष जल के प्रति प्रभाग अपनी गहरी अनुभूति को ही व्यक्त करते हैं, वह उन्हें कॉलेज के दिनों से आज तक कई रुपों में देखते आएं हैं, अब उन्हें विकास के चौराहे पर देखकर, उनके जिज्ञासा का देव उन्हें जिस मार्ग से ले जा रहा है वह उन्हें कल्याणकर होगा, ऐसी आकांक्षा प्रकट करते हैं, एक अन्य पत्र में जो 13/08/1940 का पत्र है, जिसमें प्रभाग अपने मानसिक सन्ताप उत्ताप के क्षणों में मुक्तिबोध को याद करते हैं और कहते हैं कि "जीवन में कुछ गम्भीर कर्मधारा का प्रवेश होना पड़ेगा । फिल हम कर रहे हैं; कौन जाने कर्म पर वह सब कब उतरेगा? तुम कितने समीप हो जाते हो मुक्तिबोध ऐसे सुन्दर क्षणों मे; मैं पथहीन लक्ष्य से सर्वथा अनभिज्ञ; यात्री (?) हूँ , ऐसा सभी मित्र कहते हैं। यह क्या रंग है; समझा सकोगे ? मुझमें तो जाने क्यो दिन ब दिन जीवन के प्रति अनास्था हो रही है। बढ़ रहा है मेरा मुझी में अविश्वास !"4 एक अन्य पत्र जो 24/09/1940 हैं, जिसमें प्रभाग कलकत्ता इम्पीरियल लाइब्रेरी मे पढ़ने जाने की खुशी साझा करते हुए मुक्तिबोध से कुछ आर्थिक मदद करने का तकाजा करते है, कहते हैं कि "तुम्हारी तकलीफो को मैं जानता हूँ। पर तब भी तुम्हें इस समय कुछ मदद करनी पड़ेगी। जीतनी कर सको। मैंने चुनिन्दा चार–पाच मित्र चुने हैं। उनमें माचवे नहीं है, वीरेन्द्र भी नहीं है। तुम्हारा और मेरा दुर्भाग्य की तुम उनमें हो!"5 अतः तुरन्त पत्र लिखो कि कितना तुम प्रबन्ध कर सकोगे।

प्रभाकर बलवन्त माचवे से मुक्तिबोध का परिचय वीरेन्द्र के माध्यम से ही हुआ था, धीरे–धीरे यह परिचय मित्रता में बदल गया, अपने एक 26/11/1937 के पत्र में माचवे मुक्तिबोध से शिकायती लहजे मे कहते है कि "यहां तो काफी मित्रता हम लोगो की हो गई थी। पर ओ कलाकार- in-embryo क्या वह मित्रता यहां तक ही की थी क्या? क्या चिट्ठी–विट्ठी न भेजने की कसम खा बैठे हो? क्या बात क्या है?"6 इसी पत्र में मुक्तिबोध के हवाले से विलायतीराम घेई और वीरेन्द्र के भी पत्राचार न करने

ISSUE-26 VOL-2 IMPACT- IIJIF-7.312 ISSN-2454-6283 अक्तूबर–दिसंबर, 2021

से माचवे कहते हैं, मैने कहा न आदमी का भी जब तक पास तब तक आस रहती है। फिर कौन किसके होते हैं। अपने 11/01/1950 के पत्र में माचवे, अज्ञेय जी से मुक्तिबोध के अस्वास्थ्य के बारे में सुनकर चिंतित होते हैं और उन्हें अपने यहां चले आने का आग्रह करते हुए कहते हैं कि "वैसे तुम यहां कुछ दिन के लिए क्यों नही चले आते । मेरे यहां जो कुछ रुखी–सूखी होगी, दो जून तो खाने को दे ही दूंगा। छुट्टी लेकर आ जाओ। कुछ दिन रहो । मुमकिन है कोई काम भी तुम्हारे लिए निकालें।"7 माचवे की चिन्ता केवल उनके स्वास्थ्य के ही प्रति नहीं बल्कि उनके आजीविका के प्रश्न को लेकर भी वह चिन्तित थे । मुक्तिबोध के दाएं अंग पर पक्षाघात की खबर श्रीकांत से सुनकर उन्हें आघात पहुचा था। अपने 18/02/1964 के एक पत्र में वे कहते हैं कि मैं बहुत अपराधी हूं कि हमेशा तुम्हारी चर्चा करते रहता हूँ –पर अरसे से पत्र नहीं भेज पाया। आशा है तुम जल्दी स्वस्थ हो जाओगे। शान्ताबाई और बच्चों को धीरज किन शब्दों मे दूं?

अपने लेखन के शुरुआती दिनो में मुक्तिबोध बौध्दिक सखा के रुप में अज्ञेय से सख्य की मांग करते हैं, जिसमें अज्ञेय अपनी विवशता प्रकट करते हुए अपने 7/07/1942 के पत्र में कहते है कि "मैं बौध्दिक दृष्टि से बहुत अच्छा सखा नहीं हूँ –क्योंकि अन्ततः मैं स्वय एक घोर अकेला आदमी हूँ। आपने जाने अनुभव किया है या नहीं, पर मैं विश्वास करता हूँ कि यह अकेलापन बाह्य परिस्थितियों का परिणाम नहीं है।आदमी के भीतर ही एक अनिवार्यता होती है। जिसके कारण वह अकेला ही रहने को बाध्य होता है। वह विवशता मुझमें भी है। अतः मैं स्वयं एक उच्चतर तल पर सख्य की मांग करता हुआ भी उसे पाने में असमर्थ हूँ –क्योंकि मैं उसे देने में असमर्थ हूँ।"8 आगे इसी पत्र में अपने व्यक्तित्व के रचनात्मक पहलुओं पर पड़ रहे प्रभाव के बारे में कहते हैं, कि मैं जानता हूं कि यह मौलिक अभिशाप ही मेरी रचनाओं को भी ऐसा रखता है कि वे आदर पावें पर जनप्रिय न हो।

नारायण विष्णु जोशी से मुक्तिबोध का परिचय भी प्रभाकर माचवे के माध्यम से ही हुआ, नौकरी के सिलसिले में बाद में यह सम्बन्ध पारिवारीक हो गया इतना पारिवारीक कि डॉ जोशी अपने बहन की बेटी के रिश्ते की बात–चीत की जिम्मेदारी मुक्तिबोध को सहेजते हैं, अपने 10/01/1940 के पत्र में वह कहते है कि " I have dropped today a letter to my sister at Agar and she is expected to come down to ujjain on the 13th evening. I too come down to ujjain on the same day by the night train to see that everything with regard to the matter is properly settled. in case I do not come down please take my sister with you and show her the girl. in the meantime I wish that you should talk to Mr. Telang about the terms of marriage. "9 डॉ. जोशी मुक्तिबोध का ध्यान शादी की शर्तों पर ले जाते हैं और तेलंग जी से सारी स्थितियों को स्पष्ट कर लेने का दायित्व सौंपते हैं। एक अन्य पत्र जो 10/09/1941 का है, जिसमें डॉ. जोशी अपनी अगाध खुशी मुक्तिबोध के पुनः शारदा शिक्षा सदन लौटने की इच्छा पर प्रकट करते हैं, और उन्हें इस पत्र में लिखते हैं कि "Very glad to receive your letter. you are always welcome here. in fact, we shall be very happy here in your company. "10 इसी के अगले दिन के पत्र में नेमि जी के शुजालपुर पहुँचने की सूचना देते हुए जोशी जी हर्षित होते हैं और मुक्तिबोध के शुजालपुर जल्द आने के इरादे को लेकर पत्र लिखने का आग्रह करते हैं।

वीरेन्द्र कुमार जैन माधव कॉलेज से ही मुक्तिबोध के परिचित रहें हैं, लेकिन दोनों की मित्रता प्रगाढ़ इन्दौर में बी. ए. के दौरान ही हुई। अपनी वैचारिक भिन्नता के बावजूद, एक दूसरे से अनबन के बावजूद दोनों की अंतरंगता देखने योग्य है, अपने 11/02/1942 के पत्र में वीरेन्द्र लिखते हैं कि "कल तुम्हारा पत्र फिर मिला। जिस कदर खुशी हुई मैं लिखकर तुम्हें बता नहीं सकता। इसलिए कि नाराज होकर भी क्या तुम कभी मेरे अनात्मीय हो सकते हो; बीच में तीन चार पत्र तुम्हारे आए, अपनी उस विवशता को क्या कहूँ –जिससे मैं उत्तर न दे सका। बहरहाल सुना, तुम्हारा गिला–शिकवा मुझ तक पहुंचा कई रुपों में कि तुम अपने इस हमराज़ अजीज दोस्त की बावफा खामोशी के अब तो आदि हो गए हो– उसका क्या मतलब हो सकता है– यह जानने को बेचैन थे। लेकिन तुम यह जान लो कि तुम्हारी नाराजी और शिकायत सुनकर भी मैं खुश था।"11 आगे इसी पत्र में वो कहते हैं कि मेरा दिल भरा आता था इसलिए कि तुम मेरे हो और इसी हक से तो नाराज होते हो, नहीं तो हर मामूली आदमी को मुझसे नाराज होने की कहां फुर्सत है।

मुक्तिबोध के पक्षाघात की खबर सुनकर 'आलोचना' पत्रिका के संपादक रहें शिवदानसिंह चौहन अपने 27/02/1964 के पत्र में उनके प्रति गहरी आद्रर्ता प्रकट करते हैं, ऐसे समय में देरी से जवाब के लिए भी वह दुख जाहिर करते हैं, कहते हैं कि "हार्दिक दुख है कि पहले उत्तर नहीं दे सका, खासकर जबकि सोचता हूँ कि इस देरी से आपको नुकसान हो सकता है। आपके दाएं अंग को पक्षाघात हो गया है, यह जानकर जितना दुख और चिंता हो रही है, इसको व्यक्त करना सम्भव नहीं है। इस विपत्ति

ISSUE-26 VOL-2 IMPACT- IIJIF-7.312 ISSN-2454-6283 अक्तूबर–दिसंबर, 2021

से आपको तो लड़ना ही है, हम सब लोगों को जो आपके मित्र और प्रशंसक हैं अपनी सामर्थ्य भर आपको बल और साधन प्रदान करने का दायित्व उठाना है।"12 शिवदानसिंह मुक्तिबोध से इलाज के लिए दिल्ली आने का निवेदन करते हैं, वह कहते हैं कि दिल्ली आने पर भी अगर यह मालूम हुआ कि भारत में आपका इलाज संभव नहीं तो हम लोग (साहित्यिक लोग) आपको सोवियत यूनियन भेजने का प्रबन्ध करेंगे।मुक्तिबोध के दिन आजीविका की समस्या के कारण परेशानी में गुजर रहें हैं, यह जानकर 'हंस' के संपादक अमृतराय को बड़ी तकलीफ होती है, अपने 27/10/1947 के पत्र में वे कहते हैं– "कल तुम्हारे खत से मुझे बड़ी तकलीफ हुई। नेमि के पास जो खत गया था, उसमें भी ऐसी कुछ बातें थी। बड़ी परेशानी में तुम्हारे दिन गुजर रहे हैं। मेरे लायक जो खिदमत हो, निःसंकोच आज्ञा दो।"13 आगे इसी पत्र में वह हंस के एक सहायक के रुप में मुक्तिबोध से आग्रह करते हैं कि "नागर (नरोत्तम दास नागर) को भी काम की सख्त जरुरत है। मगर तुमको भी तो है। और तुम मेरे अधिक पास हो , इसलिए मैं चाहूँगा, कि तुम आ जाओ। इसका यूँ कतई मतलब नहीं है, कि अमृत राय मुक्तिबोध पर कोई अहसान कर रहा है। कोई किसी पर अहसान नहीं करता।"14 लेकिन काम के समय स्ट्रिक्ट होने के शर्त पर भी जोर देते हैं, ताकि मित्रता और पेशे की जिम्मेदारियों पर कोई आँच न आए।जगत शंखधर 'प्रदीप' पत्रिका के सहायक सम्पादक और मुक्तिबोध के मित्र रहें हैं, जिन्हें वह अपना उपन्यास स्नेह भावना के कारण प्रकाशित करने के लिए मुफ़्त में ही देने के लिए कहते हैं, जिसपर द्रवित होकर 18/1/1946 के पत्र में शंखधर अपनी भावना प्रकट करते हुए मुक्तिबोध को लिखते हैं कि "मेरे लिए आप उपन्यास मुफ़्त देंगे। पहले–पहल पढ़ने पर यह बात मुझे निहायत unbolshevic लगी और मैं इस विषय में कुछ और ही कहने वाला था। पर सोचा कि बोल्शेविक भी पहले मानव है और स्नेह भावना उनमें पहली चीज है। दो दिन के पहचान में ऐसा क्या मिला जो यह करने की सोच रहे हो। उपन्यास जब देना तब देना– मैं उस भावना को साभार, ससम्मान, नतशिर स्वीकार करता हूँ।"15 भारतभूषण अग्रवाल का भी परिचय माचवे के माध्यम से ही मुक्तिबोध से हुआ था, यह तो सर्वविदित है, कि मुक्तिबोध का स्वभाव संकोची प्रवृति का रहा है और आर्थिक अभाव तो उनके जीवन से अभिन्न रुप से जुड़ा रहा, लेकिन इस प्रवृति के कारण मुक्तिबोध का अग्रवाल जी से फेवर मांगने में संकोच करना उन्हें नाराज करता है, उनकी नाराजगी के पीछे–छिपे आत्मीयता को उनके 27/04/1946 के पत्र के जरिये देखा जा सकता है, वह लिखते हैं कि "your letter dated the 20th has just reached me. Maybe you had to fight hard within yourself on 'to post or not to post". Any way you need not to hesitant or shy in demanding a very easy favour from a friend like me. As a matter of fact it is better to ask such favour only from those who understand you and your difficulties. "16 इस तरह भारत भूषण कहते है कि यह तुम्हारा अधिकार है, कि तुम मुझसे मदद के लिए निःसंकोच कह सकते हो। अपने एक अन्य पत्र में अग्रवाल जी मुक्तिबोध से छुट्टियां अपने साथ बिताने का आग्रह करते हैं, वह 30/03/1947 के पत्र में कहते हैं कि "Do you think you could come here and stay with me during your vacation? I will love to get your company and Binduji will be so pleased to have shantaji ."17

मुक्तिबोध के अजीज नेमिचन्द्र जैन रहे हैं, यह एक महत्वपूर्ण नाम मुक्तिबोध के जीवन का है जिनसे उनकी अंतरंगता अत्यधिक प्रगाढ़ रही है, जिसकी बानगी उनके द्वारा लिखे पत्रों में मौजूद है, एक पत्र में तो वह यहाँ तक कहते है कि रुह मड़राती है, वहाँ जहाँ आप बैठते हैं, ऐसे गहन आत्मीय मित्र को अगर नेमिचन्द्र जैन भले ही परिस्थितिजन्य विवशताओं के कारण पत्र न लिख पाने के अपराध बोध से ग्रसित हो जाते हो तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं, अपने बम्बई से लिखे 24/02/1947 के पत्र में कहते है कि "I am almost nervous to write these lines to you. My criminal and unjustified sleeping over your so intimate and loving letters makes me feel so embarrassed now when I finally muster up enough determination to write to you. I will not ask you to forgive me. You must not. That will be proper reminder to me for future.18 एक अन्य पत्र में वह बहुत दुखी होते हैं, यह जानकर की मुक्तिबोध अपनी नौकरी खो चुके हैं, और इलाहाबाद में उनके लिए नौकरी तलाश करने के लिए भी उन्हें आश्वस्त करते हैं, अपने 22/09/1947 के पत्र में वह लिखते हैं कि "I was so sorry to get your letter. It is really very unfortunate that you should have lost your job at this moment. I have already wired you Rs. 50/- which you must have got. I am trying to get a job for you. Please write to me by return of post if you can accept a job of between Rs.75/- to 85/- in Allahabad. "19 इसके अलावा वह उन्हें सलाह भी देते हैं कि यहाँ लेखन से भी अतिरिक्त पैसे कमाए जा सकते हैं। कुल मिलाकर वह उनके स्थिति के सुदृढ़ीकरण में हर तरह से सहयोग देने से गुरेज नहीं करते हैं।हरिनारायण व्यास दूसरे सप्तक के कवि हैं, जिन्हें मुक्तिबोध का सानिध्य मिला, कवि की जीवन चेतना मिली, जिसे

ISSUE-26 VOL-2 IMPACT- IIJIF-7.312 ISSN-2454-6283 अक्तूबर–दिसंबर, 2021

व्यास खुद सप्तक के वक्तव्य में स्वीकार करते हैं, मुक्तिबोध का पत्र पढ़कर वह सुख का अनुभव करते हैं, साथ ही उनके अस्वस्थ होने से अधिक चिन्ता भी व्यक्त करते हैं अपने 17/11/1947 के पत्र मे वह लिखते हैं कि "आज आपका पत्र मिला। पढ़कर जो सुख हुआ उसका वर्णन शब्दों की शक्ति के बाहर है। यह जानकर कि आप अस्वस्थ हैं बड़ी चिन्ता हुई।"20

मुक्तिबोध के द्वारा लिखे गए पत्र की प्रतिक्रिया एक लम्बे अंतराल के बाद देते हुए शिवमंगल सिंह 'सुमन' लज्जा और ग्लानि से नतमुख दिखाई पड़ते हैं, वह कहते हैं अपने 30/04/1949 के पत्र में कि "बडी ही लज्जा और ग्लानि से नतमुख आज तुम्हें उत्तर देने का साहस संजो सका हूं। मेरी इस अक्षम्य अकर्मण्यता के प्रति तुम जितने भी अवज्ञाशील हो सको, कम है। सच मानो जीवन में पहले पहल तुम्हारा पत्र पाकर मुझे अनायास ही जो हार्दिक सुख मिला था, उसे व्यक्त कर सकने योग्य मुख ही मेरा नहीं रहा।"21 जीवन के बिखराव और संयोग के अभाव में पत्र न लिख पाने की उनकी विवशता और उससे उपजी हुई ग्लानि ही मित्रता की भावभूमि को प्रकट करती है। नरेश मेहता जिन्हें मुक्तिबोध का संसर्ग मिला। उन्ही के शब्दों में " मैने उन्हें सन् 1953 के दिनों में पूरे वर्ष भर देखा। यदि भूल नही करता तो वह मुहल्ला शुक्रवारी नाम से जाना जाता था।"22 हालांकि नरेश एक दूसरे को उज्जैन से ही जानते थे, बल्कि एक दूसरे को नापसन्द भी करते थे, लेकिन रेडियो की नौकरी के दौरान उनमें घनिष्ठता आती गई, बल्कि वह अत्यधिक पारिवारिक होते गए। मुक्तिबोध की पुत्री सरोज की मृत्यु की बात सुनकर वह व्यथित हो उठते हैं, अपने 7/04/1956 के पत्र में वह कहते हैं कि "प्रिय सरोज नहीं रही। यह एक ऐसी दुर्घटना है, कि जिस पर कुछ भी कह सकना कठिन है। कई बार मुझे ध्यान आता है, कि अच्छे एवं प्रिय क्यों ऐसे शीघ्र चले जाते हैं? और हमारे जैसे व्यर्थ की स्थिति बनाए सींग मारते, नथुने फुलाए बैठे रहते हैं। भाभी को मेरी ओर से सांत्वना दीजिए।"23 नरेश अपने पत्रों में अक्सर ही अपने यहाँ आने का आग्रह मुक्तिबोध से करते रहें हैं यहॉ तक कि उनकी पत्नी महिमा भी एक पत्र में उनसे आग्रह करती हैं अपने 8/06/1960 के लिखे पत्र में वह कहती हैं कि "मेरा आप लोगों से सिर्फ इतना ही आग्रह है कि आजकल गर्मी की छुट्टियाँ हैं, तो आप लोग बच्चों सहित कुछ दिनों के लिए यहाँ आ जाइए। इनका भी अनुरोध है।"24 इसी पत्र में आगे नरेश कहते हैं, यदि आप आ जाएं तो क्या बात है– मौसम बदल जाएगा, मन तरल जाएगा और के आगे उन्हें कुछ सूझता भी नहीं तो पत्र को विराम दे देते हैं।

श्रीकांत वर्मा पर मुक्तिबोध का अत्यधिक स्नेह रहा, अपने से उम्र में छोटे रहने के बावजूद भी मुक्तिबोध उन्हें सम्मान से ही अपने पत्रों में सम्बोधित करते रहें, श्रीकांत भी उन्हे हृदय भर सम्मान एवम् सौहार्द देते रहें हैं। उनसे अपनी पहली मुलाकात के बारे में श्रीकान्त कहते है कि "पहली ही मुलाकात में मुझे मुक्तिबोध अत्यंत प्रबुध्द किन्तु सरल व्यक्ति लगे। उनके चेहरे पर गरीबी की मार थी, पर स्वाभिमानी होने की क्षमता भी स्पष्ट दिखाई पडती थी।"25 एक बार श्रीकांत जी का मुक्तिबोध से परिचय हुआ, फिर वह प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होता गया। मुक्तिबोध के पत्र श्रीकांत के लिए रेगिस्तान में चलते हुए आदमी को हरित भूमि की तरह दिखाई पढ़ते हैं। 13/12/1963 के पत्र में वह कहते हैं कि "आपका पत्र आता है तो बहुत करीब से आपकी आवाज सुनाई पड़ती है। रेगिस्तान में चलते हुए आदमी को अचानक हरित भूमि दिखाई पड़ जाए, वैसा ही अनुभव होता है।"26 शमशेर बहादुर सिंह मुक्तिबोध के घनिष्ठ रहें हैं वह केवल मुक्तिबोध के व्यक्तित्व को ही नहीं पसन्द करते बल्कि उनकी कविताओं से भी गहरा जुड़ाव महसूस करते हैं, शमशेर अपने 13/11/1956 के पत्र में मुक्तिबोध से कहते हैं कि "तुम्हारी कविताओं का मैं पहले से अधिक प्रेमी हो गया हूँ। सच कहता हूँ।"27 साप्ताहिक पत्रिका 'नया खून' में मुक्तिबोध का नाम देखकर उन्हें अच्छा लगता है। सन् 1961 का पत्र जिसकी निश्चित तिथि ज्ञात नहीं, शमशेर राजनाँदगाँव में मुक्तिबोध के परिवार के साथ बिताए गए छः दिनों को याद करते हुए कहते हैं कि "वास्तव में वहाँ सिर्फ नरेश की और महिमा की कमी थी, बस। भाभी जी भी कैसी समर्थ भाभी जी हैं। ईश्वर सदैव उन्हें सुखी रखे और खूब सुखी रखे (...यानी तुम्हें) पिता जी का भी गम्भीर, सहज व्यक्तित्व भूल नहीं सकूँगा।"28

अशोक बाजपेयी मुक्तिबोध से अपनी पहली भेंट के संदर्भ में बताते हैं कि "1957 में इलाहाबाद में हुए प्रसिध्द साहित्यकार सम्मेलन में मेरी उनसे पहली बार भेंट हुई।"29 उस वक्त बाजपेयी जी की उम्र मात्र सत्रह वर्ष की थी। उसके बाद मुक्तिबोध के प्रति उनका आत्मीय रुझान उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। उनकी कविताओं से इतना लगाव की साल, छः महीनो में एकाध कविता ही किसी पत्रिका में पढ़ पाने की शिकायत करते हैं। मुक्तिबोध की बीमारी की सूचना पाकर बाजपेयी जी विगलित हो जाते हैं और उसमें भी ऐसी खराब हालत में मुक्तिबोध द्वारा इस

ISSUE-26 VOL-2 IMPACT- IIJIF-7.312 ISSN-2454-6283 अक्तूबर–दिसंबर, 2021

तरह से विस्तारपूर्वक उत्तर पाकर वह भाव विह्वल हो उठते हैं, अपने 17/02/1964 के लिखे पत्र में वह कहते हैं कि "आपने इतनी खराब हालत में भी मेरे पत्र का उत्तर दिया है। इसने मुझे विगलित कर दिया। एक बीमार अधेड़ लेखक जो इतना रोग ग्रस्त है कि बिस्तर से उठना डॉक्टरों ने बाधित कर रखा है, एक युवा लेखक को उसके पत्र का इतने विस्तार से उत्तर देता है और आखिर में यह लिखना नहीं भूलता कि आपसे मिलने की बहुत तबीयत होती है– मुझे नही मालूम कि जीवन में इससे अधिक मानवीय और मार्मिक प्रसंग मैं याद कर सकता हूँ।"30 के. पार्थसारथी मुक्तिबोध के राजनाँदगाँव के मित्र रहें हैं, वह अंग्रेजी के प्राध्यापक रहें और मुक्तिबोध हिन्दी के, दोनों में गहरी अंतरंगता थी, वे साथ–साथ घुमने जाया करते थें, मुक्तिबोध के भावनात्मक एवं स्नेहपूर्ण पत्र को पाकर वह गहरी कृतज्ञता प्रकट करते हैं, अपने 18/06/1962 के पत्र में वह लिखते हैं कि "I am extremely glad and sincerely thankful to you for your very feeling and affectionate letter that there is one person who understands me in right. I think is an achievement of my personality."31 इसी पत्र में वह कहते हैं, कि जब कभी भी मैं किताब उठाता हूँ, तो मुक्तिबोध मेरे सामने कभी प्रेरणात्मक तो कभी उत्साहवर्धक होते हैं।

अग्नेश्का कोवालस्का के लिए पहली पहल मुक्तिबोध से परिचय का सबब उनकी कवितायें ही बनी। वह बनारस से निकलने वाली पत्रिका 'कवि' (अप्रैल 1957) में मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता पढ़कर बहुत प्रभावित हुई थी। बाद में मध्यप्रदेश की यात्रा के दौरान वह मुक्तिबोध से राजनाँदगाँव में ही मिली। उनके मृदु और आत्मीय स्वभाव से अग्नेश्का जी की सारी झिझक अनायास ही मिट गई। 27/10/1962 के पत्र में वह मुक्तिबोध के सद्व्यवहार एवं उनकी पत्नी के मातृ–स्नेह से अभिभूत होकर लिखती है कि "मैं खुद क्या बताऊँ, अनुभूति हुई जिसके लिए मेरे हृदय में गहन श्रध्दा फैल गई है, और मानवता का सही अर्थ आँखों के सामने चमक उठा है और आपकी श्रीमती का सहृदय व्यवहार, प्रसन्नता और मातृस्नेह कभी न भूल सकूँगी।"32 विलायतीराम घेई मुक्तिबोध के कक्षा 9वीं से लेकर बी.ए. तक सहपाठी रहें हैं, उनकी मित्रता का कारण भी साहित्यिक अभिरुचि ही रही है, मुक्तिबोध के विवाह की खबर पाकर वह रोमांचित हो जाते हैं, अपने 10/01/1939 के पत्र में वह ह मुक्तिबोध से कहते है कि "I am extremely happy to hear your news and I am sharing in full the delight of your heart. What was only a dream is now a reality but to a newly awakened idle like me it still seems to possess a dream like halo and thrill."33 आगे इसी पत्र में उनकी शादी में न पहुँच पाने की विवशता को भी प्रकट करते है।

अंततः निष्कर्ष रुप में यही कहा जा सकता है कि इन सभी साथियों, मित्रों की संवेदनापूर्ण प्रतिक्रियाओं के बहाने मुक्तिबोध के भीतर संवेदना का जल और ज्यादा समृद्ध ही हुआ होगा, इसमें संदेह नहीं, यहां मुक्तिबोध का ही लिखा वह वाक्य याद आता है, जो कभी उन्होंने वीरेन्द्रकुमार जैन से साझा किया था, नागपुर से लिखे 12/02/54 के पत्र में वह कहते हैं कि "जिन्दगी बड़ी तल्ख है; लेकिन इस तल्खी के बीच मिठास के अपने अमर क्षण भी हैं।"34 मुक्तिबोध ने यह वाक्य एक विशेष मनःस्थिति में लिखा था, लेकिन उनके जीवन की यात्रा की तल्खी को देखकर यह कहना सर्वथा उचित होगा कि उनके मित्रों के संवेदना से सने पत्र उस तल्खी के बीच जीवन के मिठास की तरह अमर क्षण बनकर आतें होंगे और उन्हें प्रेरणा देते होंगे।

संदर्भ ग्रन्थ–1– तार सप्तक, सम्पादक अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नईदिल्ली, बारहवां संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या 24 **2–** मेरे युवजन मेरे परिजन (ग. मा. मुक्तिबोध के नाम पत्र) सम्पादक– रमेश गजानन मुक्तिबोध, अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नई–दिल्ली, पहला संस्करण:2007, पृष्ठ–संख्या–12 **3–**वही, पृष्ठसंख्या 21 **4** वही, पृष्ठसंख्या 26 **5–**वही, पृष्ठ–संख्या27 **6–**वही, पृष्ठ– संख्या31 **7–**वही, पृष्ठ– संख्या38 **8–**वही, पृष्ठ– संख्या42 **9–**वही, पृष्ठ– संख्या57–58 **10** वही, पृष्ठ– संख्या61 **11–**वही, पृष्ठ– संख्या83 **12–**वही, पृष्ठ– संख्या124 **13–**वही, पृष्ठ– संख्या136 **14–**वही, पृष्ठ– संख्या136 **15–**वही, पृष्ठ– संख्या145 **16–**वही, पृष्ठ– संख्या160 **17–**वही, पृष्ठ– संख्या161 **18–**वही, पृष्ठ– संख्या170 **19–**वही, पृष्ठ– संख्या172 **20–**वही, पृष्ठ– संख्या177 **21–**वही, पृष्ठ– संख्या 180 **22–**महागुरू मुक्तिबोध : जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर, कान्तिकुमार जैन , सामयिक प्रकाशन , नई–दिल्ली, संस्करण : 2018, पृष्ठ–संख्या – 108 **23–**मेरे युवजन मेरे परिजन (ग. मा. मुक्तिबोध के नाम पत्र)–सं.–रमेश गजानन मुक्तिबोध , अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली , पहला सं : 2007, पृष्ठ संख्या–201 **24–**वही, पृष्ठ–संख्या–209 **25–** महागुरू मुक्तिबोध : जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर, कान्तिकुमार जैन , सामयिक प्रकाशन , नई–दिल्ली, संस्करण : 2018, पृष्ठ–संख्या 215 **26–** मेरे युवजन मेरे परिजन (ग. मा. मुक्तिबोध के नाम पत्र)–सं.–रमेश गजानन मुक्तिबोध , अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन–नई दिल्ली, पहला सं : 2007, पृष्ठ संख्या–270**27** –वही, पृष्ठ–संख्या–276 **28** –वही, पृष्ठ–संख्या–276 **29–** आलोचना (पत्रिका) प्रधान सं. नामवर सिंह ,राजकमल प्रकाशन , 55वाँ अंक, जुलाई–सितम्बर– 2015, पृष्ठ संख्या69**30–** मेरे युवजन मेरे परिजन (ग. मा. मुक्तिबोध के नाम पत्र) सं.रमेश गजानन मुक्तिबोध ,अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन – नई दिल्ली , पहला सं : 2007, पृष्ठ संख्या –317 **31** –वही, पृष्ठ– संख्या –337 **32** –वही, पृष्ठ– संख्या –341 **33** –वही, पृष्ठ– संख्या –364 **34–** मुक्तिबोध समग्र (खण्ड – 7)सं. नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन, नई–दिल्ली, पहला–संस्करण :2019, पृष्ठ–संख्या435